मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम

समाजकार्य स्नातक पाठ्यक्रम (प्रथम वर्ष)

(सामुदायिक नेतृत्व में विशेषज्ञता सहित)

Bachelor of Social Work (First Year)

(With Specialization in Community Leadership)

मॉड्यूल–1

समाज कार्य का परिचय

(Introduction to Social Work)

प्रायोजक

महिला एवं बाल विकास विभाग, मध्यप्रदेश

आदिम जाति कल्याण विभाग, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जन अभियान परिषद

संचालन

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय

चित्रकूट, सतना (म.प्र.) – 485334

मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास पाठ्यक्रम

बैचलर ऑफ सोशल वर्क
(कम्युनिटी लीडरशिप)

Bachelor of Social Work
(Community Leadership)

स्व–निर्देशित अध्ययन सामग्री
Self Instructional Learning Study Material

मॉड्यूल–1

समाज कार्य का परिचय
Introduction to Social Work

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रम

मॉड्यूल–1 : समाज कार्य परिचय (Introduction to Social Work)

अवधारणा एवं रूपरेखा : **संस्करण 2017**

बी.आर. नायडू , आई.ए.एस. प्रमुख सचिव

जे.एन. कंसोटिया, आई.ए.एस. प्रमुख सचिव

अशोक शाह, आई.ए.एस. प्रमुख सचिव

प्रेरणा एवं मार्गदर्शनः

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम, कुलपति, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

परामर्शः

डॉ. अरुण गोपाल

डॉ. टी. करुणाकरन, पूर्व कुलपति

जयश्री कियावत, आई.ए.एस., आयुक्त, महिला सशक्तिकरण

उमेश शर्मा, कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश जन–अभियान परिषद

लेखक मण्डल :

डॉ. विनोद शंकर सिंह

डॉ. अजय आर. चौरे

संपादक मण्डल :

डॉ. वीरेन्द्र कुमार व्यास

डॉ. अमरजीत सिंह

डॉ. कुसुम सिंह

डॉ. ललित सिंह

मुद्रक एवं प्रकाशक :

ग्रामोदय प्रकाशन के लिए कुलसचिव

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

जिला–सतना (मध्यप्रदेश) – 485334, दूरभाष– 07670–265411

सम्पर्कः

डॉ. अमरजीत सिंह, निदेशक एवं लिंक अधिकारी

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

ई–मेल– cmcldpcourse@gmail.com, मोबाइल– 9424356841

श्री आर. के. मिश्रा, राज्य सलाहकार (यूनिसेफ) सी.एम.सी.एल.डी.पी.

ई–मेल– rkmishraguna@gmail.com, मोबाइल– 9425171972

आभारः– इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री अनेक स्रोतों, व्यक्तियों के अनुभव और संस्थाओं के प्रकाशनों एवं वेब साइट्स पर उपलब्ध सामग्री के सहयोग से तैयार की गई है। पाठ्यक्रम के परामर्शदाताओं का अनुभव और सुझाव भी इसमें शामिल है। सभी के प्रति आभार।

मॉड्यूल–1

समाज कार्य का परिचय
(Introduction to Social Work)

विषय–सूची

प्रस्तावना

मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य हमारे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में ऐसे क्षमतावान युवक एवं युवतियां तैयार करना है, जिन्हें क्षेत्र के विकास की समझ हो। जो क्षेत्र की समस्याओं की पहचान कर सकें। उन समस्याओं से मुक्ति का मार्ग खोज सकें। समाज की समस्याओं के समाधान के लिए केवल सरकारी प्रयासों पर निर्भर न हों, बल्कि समुदाय के परिश्रम और पुरुषार्थ से ग्राम की या अपने आस–पास की परिस्थितियों को बदलने के लिए ईमानदार कोशिश कर सकें। यह चुनौती भरा कार्य है। आसान भी नहीं है। इसे करने के लिए कुछ गुण, कुछ विशेषताओं और कुछ युक्तियों को सीखना जरूरी है। इन्हें सीखकर ही आप ग्राम के विकास के प्रयासों को एक वैज्ञानिक स्वरूप दे सकते हैं। आप जो करें वह स्थायी हो। सबके सहयोग से हो। सबके विकास में सहयोगी हो। इस दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण आयामों को इस पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में समायोजित किया गया है।

सैद्धांतिक विषयों की कड़ी में प्रस्तुत यह पहला माड्यूल है, जिसका शीर्षक–"समाज कार्य परिचय" है। इस माड्यूल में व्यक्ति और समाज के विकास की परस्पर पूरकता को दर्शाते हुए समाज कार्य की अवधारणा एवं उससे मिलते–जुलते अन्य शब्दों जैसे समाज कल्याण, समाज सुधार, सामाजिक विकास, सामाजिक सुरक्षा इत्यादि को भी स्पष्ट किया गया है। इसमें यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि एक सामुदायिक नेतृत्वकर्ता सबकी सहभागिता से सामाजिक समस्याओं का समाधान करके किस प्रकार स्वयं एवं समाज दोनों का विकास कर सकता है।

विश्वास है कि जानकारी और प्रशिक्षण आपके लिए उपयोगी और प्रभावी सिद्ध होगा। चलिए! शुभकामनाओं के साथ पठन–पाठन की इस रचनात्मक प्रक्रिया के साझीदार बनते हैं।

1.0 विषय प्रवेश : विकास के लिए समाज कार्य – एक संवाद (Introduction : Social for Development)

माड्यूल 2 में विकास से संबंधित जानकारी प्रदान की गई थी। माड्यूल 3 में आपने नेतृत्व के विविध आयामों के विषय में जाना। माड्यूल 3 में संचार और विकास के लिए आवश्यक जीवन कौशल को जानने का अवसर प्राप्त हुआ। इस माड्यूल में व्यक्ति और समाज के संबंधों के साथ ही व्यक्ति को समाज का कार्य क्यों करना चाहिए, कैसे करना चाहिए? और उससे विकास की प्रक्रिया को कैसे गति मिलेगी? को जानने का अवसर प्राप्त होगा।

सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा समाज कार्य करने से सम्बन्धित कुछ प्रेरक उदाहरणों के माध्यम से समाजकार्य से सामाजिक समस्याओं के समाधान को प्रस्तुत किया जा रहा है। आइये इनसे हम प्रेरणा लेकर समाज कार्य को समझने का प्रयास करें। माडूल दो, तीन एवं चार में प्रेरणा और भारती के द्वारा बातों ही बातों में अनेक कठिन प्रश्नों के मतलब को सरल एवं रोचक शैली में आपने जाना है। यहां पर भी उनके मध्य हुए वार्तालाप का आनंद लेने के साथ ही आप अपना ज्ञानवर्धन कीजिए।

पर्वत ने भी मानी हार–दशरथ मांझी

भारती : दीदी आपने पिछले दिनों विकास के लिये सामुदायिक नेता को आगे आकर सबका सहयोग प्राप्त करने की बात कही थी। सबके लिए एक व्यक्ति कैसे आगे आकर कार्य करता है? और क्यों करता है?

प्रेरणा : भारती, सामुदायिक नेता सामाजिक हित या सामाजिक कल्याण के लिये अपने हितों की चिन्ता किये बगैर समाज कार्य करता है।

भारती : दीदी आपने समाज कार्य, समाज कल्याण इत्यादि एक जैसे मिलते–जुलते शब्दों की चर्चा की, क्या ये दोनों एक ही हैं?

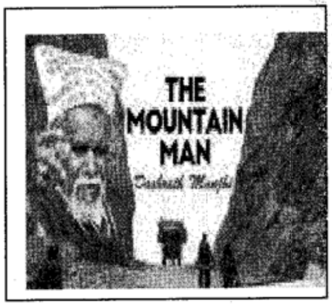
प्रेरणा : समाजकार्य व्यक्तिगत हित से उपर उठकर दूसरों के हित के लिए किया गया कार्य है। समाज कल्याण समाज में सेवाओं, सुविधाओं इत्यादि की सर्वोत्तम उपलब्धता सुनिश्चित करना है, जिससे लोगों के जीवन स्तर, स्वास्थ्य एवं रहन–सहन में अपेक्षित सुधार दिखे।

भारती : क्या ऐसे लोग हैं जो बिना अपने लाभ की चिन्ता किये दूसरों के लिये कार्य करतें हैं?

प्रेरणा : पिछले माड्यूल में इसी प्रसंग में मैंने अन्ना हजारे की कहानी सुनाई थी। अब तुम्हें समाज के लिए कार्य करने वाले दशरथ मांझी की कहानी बताती हूँ।

दशरथ मांझी बिहार के गया जिला के एक बेहद पिछड़े इलाके के एक छोटे से गाँव गहलौर के गरीब मजदूर थे। वे जिस गाँव में रहते थे वहां से पास के कस्बे में जाने के लिए एक दुर्गम पहाड़

गहलोर पर्वत पार करना पड़ता था। उनके गांव में उन दिनों न पानी था न बिजली। ऐसे में छोटी से छोटी जरूरत के लिए उस पहाड़ को या तो पूरा पार करना पड़ता था या उसका चक्कर लगाकर जाना पड़ता था। पहाड़ के दूसरे छोर पर लकड़ी काट रहे अपने पति के लिए खाना ले जाते हुए उनकी पत्नी फगुनी देवी पहाड़ के दर्रे में गिर गई। अस्पताल एवं बाजार दूर होने के कारण दवाइयों के अभाव में उनका दुखद निधन हो गया। इसके बाद दशरथ मांझी ने संकल्प लिया कि वह अकेले दम पर पहाड़ के बीच से रास्ता निकालेंगे। वे एक हथौड़ा और छेनी लेकर अकेले ही 360 फुट लंबे 30 फुट चौड़े और 25 फुट उंचे पहाड़ को काट कर एक सड़क बना डाली, जिसने अतरी और वजीरगंज ब्लाक की 55 किमी की दूरी को 15 किमी कर दिया। इसके लिये उन्हे माउन्टेनमैन की उपाधि भी मिली।





भारती : दीदी, इससे तो निश्चय ही उस क्षेत्र के लोगों का जीवन सरल हो गया होगा और मांझी जी के कार्यों की प्रशंसा हुई होगी।

प्रेरणा : सही समझा। बिहार सरकार ने उनका नाम पद्मश्री के लिए प्रस्तावित किया है तथा उनके कार्यों का सम्मान करते हुए केन्द्र सरकार ने डाक टिकट जारी किया है।

भारती : दीदी, यह तो व्यक्तिगत पुरूषार्थ से किए गए समाज सेवा कार्य का अनूठा उदाहरण है। क्या किसी स्त्री ने भी इस प्रकार का कार्य किया है?

प्रेरणा : एक नहीं अनेकों महिलाओं ने इस प्रकार के कार्य किये हैं। माड्यूल दो में मदर टेरेसा, अरूणा राय और इला भट्ट के कार्यों की कहानी को सुना। अब तुम्हें मदर टेरेसा से भी पहले समाज सेवा में अद्भुत कार्य करने वाली महिला फ्लोरेंस नाइटिंगेल की कहानी सुनाती हूं।

दीपक वाली महिला– फ्लोरेंस नाइटिंगेल

फ्लोरेंस नाइटिंगेल का जन्म एक उच्चवर्गीय एवं समृद्ध ब्रिटिश परिवार में हुआ था। परिवार के तमाम विरोधों एवं नाराजगी के बावजूद उन्होंने अभावग्रस्त एवं बीमार लोगों की सेवा का व्रत लिया। उन्होंने चिकित्सा सुविधाओं को सुधारने का कार्यक्रम आरंभ किया।

नाइटेंगल से पहले कभी भी युद्ध के दौरान बीमार व घायल होने वाले रोगियों के उपचार पर ध्यान नहीं दिया जाता था। इस महिला ने तस्वीर को सदा के लिये बदल दिया। इन्होंने क्रीमिया के युद्ध में 38 स्त्रियों का दल घायलों की सेवा के लिये तुर्की भेजा। जब चिकित्सक चले जाते तब वह रात के गहन अंधेरे में रात भर जाग कर, मोमबत्ती या लालटेन जलाकर घायलों की सेवा किया करती।

उनके इस योगदान के लिये ही उन्हें "लेडी विद द लैंप" की उपाधि से सम्मानित किया गया। उनकी प्रेरणा से ही नर्सिंग क्षेत्र में अनेक महिलाओं ने प्रवेश किया। ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने उन्हें 'रायल रेडक्रास' से सम्मानित किया।






युद्ध में घायलों की सेवा सुश्रुषा के दौरान मिले गंभीर संक्रमण ने उन्हें बीमार कर दिया और 1910 में उनका निधन हो गया। समाज सेवा से सम्बन्धित उनके कार्यों के चलते दुनिया में उनका नाम अमर हो गया।

भारती : युद्ध के मैदान में जाकर सेवा कार्य करने वाली इस साहसी महिला को मैं नमन करती हूं।

प्रेरणा : भारती, अब मैं एक ऐसी महिला की कहानी बता रहीं हूं जिसने सामुदायिक हित के लिए 23 वर्ष की अल्प आयु में ही अपनी जान की बाजी लगा दी।

भारती : वह कौन थी दीदी?

प्रेरणा : उसका नाम नीरजा भनोट था।

जनहित में अपनी जान गंवाई—नीरजा भनोट

हरीश भनोट एवं रमा भनोट की पुत्री नीरजा का जन्म चंडीगढ़ में हुआ था। उनके पिता मुंबई में पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत थे। उनकी शादी खाड़ी देश में रहने वाले व्यक्ति के साथ हुई किंतु दहेज को लेकर दो महीने बाद ही नीरजा बंबई वापस आ गई। उन्हें पैन एम विमान की परिचारिका के रूप में चयनित किया गया।

मुंबई से न्यूयार्क के लिये 5 सितंबर 1986 को रवाना पैन एम–73 को कराची में चार आतंकवादियों ने अपहृत कर लिया तथा सभी यात्रियों को बंधक बना लिया। उस विमान में सीनियर

पर्सर के रूप में नियुक्त नीरजा की तत्काल सूचना पर विमान चालक दल के तीन सदस्य काकपिट से सुरक्षित निकलने में कामयाब हो गये। 17 घण्टे बाद आतंकवादियों ने यात्रियों की हत्या शुरू कर दी और विमान में विस्फोटक लगाने लगे। यात्रियों को सुरक्षित बचाने की जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए नीरजा इमरजैंसी दरवाजा खोलने में कामयाब हो गयी।

नीरजा दरवाजा खोलकर सबसे पहले स्वयं बाहर जा सकती थी, किंतु उन्होंने ऐसा न करके पहले यात्रियों को निकालने का प्रयास किया। इसी प्रयास में तीन बच्चों को निकालते हुए जब आतंकवादी ने बच्चों पर गोली चलानी चाही तो नीरजा बीच में आकर उस आतंकवादी की गोलियों की शिकार हो गई।

नीरजा को भारत सरकार ने अपनी जान की बाजी लगाकर लोगों की जान बचाने जैसे अद्‌भुत वीरता और साहस के लिए मरणोपरांत अशोक चक्र से सम्मानित किया जो भारत का शांतिकालीन वीरता का सर्वोच्च पुरस्कार है।







इस प्रकार के समाज हित करने की प्रवृति कभी तो बचपन से ही होती है किन्तु कभी–कभी किसी तात्कालिक घटना के प्रेरणा के परिणामस्वरूप प्रकट हो जाती है। तत्कालिक घटना से प्रेरित सामाजिक कल्याण के लिए तत्पर व्यक्ति की कहानी मैं अब बता रही हूँ।

कुष्ठ रोगियों के आश्रयदाता — मनोहर बलवन्त दीवान

महाराष्ट्र के वर्धा नगर में महारोगी सेवा समिति नाम का एक स्वयंसेवी संगठन है। इस संस्था के संस्थापक मनोहर बलवंत दीवान नागपुर के मोरिस कालेज में अध्ययनरत थे। 1920 में गांधीजी के असहयोग एवं विदशी वस्तुओं के बहिष्कार आन्दोलन के आह्वान पर इन्होंने कालेज छोड़ दिया। 1934 में विनोवा जी के साथ वर्धा में बाढ़पीड़ितों की सहायता के दौरान कुष्ठ रोगियों की दयनीय स्थिति तथा उन्हे भीख मांगते हुए देखा।

एक दिन उन्होंने एक कुष्ठ रोगी को एक गटर के नाले से प्यास बुझाने के लिए पानी पीते हुए देखा, जबकि पास में ही एक सार्वजनिक नल था। उन्होंने उससे पूछा, सार्वजनिक नल से साफ

पानी क्यों नहीं पी रहे हो। उस कुष्ठ रोगी ने बताया कि किसी भी सार्वजनिक या व्यक्तिगत नल पर उस जैसे कुष्ठ रोगियों को पानी पीने की मनाही है। इस घटना ने उन्हें अन्दर तक हिला दिया। उन्होंने कुष्ठ रोगियों के भाग्य को बदल देने का निश्चय किया।

उन्होंने पूरी घटना को विनोबा जी से बताया तथा कुष्ठ रोगियों के लिए कार्य करने का प्रस्ताव दिया। विनोबा जी ने उनके प्रस्ताव का समर्थन किया तथा बाढ़पीड़ितों के लिए एकत्रित धनराशि में से शेष बचे 200 रूपये उन्हें इस कार्य के लिए प्रदान कर दिया। महाराष्ट्र के कई स्थानों पर कुष्ठ रोगियों की चिकित्सा के लिए निःशुल्क शिविर लगाने के पश्चात दत्तापुर में कुष्ठ रोगियों के चिकित्सा एवं पुनर्वास के लिए एक केन्द्र बनाया। बाबा आम्टे इत्यादि अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं ने यहीं से प्रशिक्षित होकर कुष्ठ रोगियों के लिए कार्य किया।

भारती : दीदी आपने अनेक प्रेरणादायी उदाहरणों को बताकर इसका मतलब स्पष्ट कर दिया है। समाज कार्य, समाज सुधार, समाजसेवा, समाज कल्याण जैसे अनेक शब्द क्या एक ही हैं या इनमें कुछ अंतर है?

प्रेरणा : व्यक्ति और समाज का बहुत घनिष्ठ संबंध है। यद्यपि दोनों अलग–अलग हैं किंतु दोनों परस्पर पूरक भी हैं। किसी एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। मानव का बच्चा प्रकृति में सबसे असहाय होता है। उसके पालन पोषण के लिए समाज की आवश्यकता पड़ती है। उसके व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए भी समाज द्वारा निर्मित विभिन्न संस्थाओं– जैसे परिवार, विद्यालय, पंचायत, राज्य इत्यादि का सहयोग आवश्यक होता है। इसी प्रकार समाज का निर्माण भी व्यक्तियों से होता हैं और इसके विकास में व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक होता है।

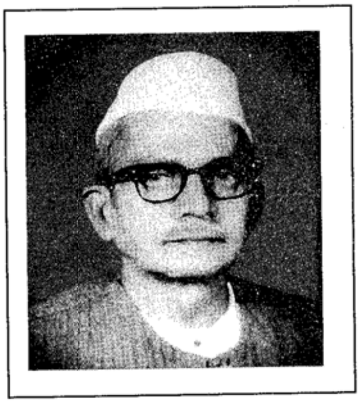
यही कारण है कि व्यक्ति के विकास के लिए समाज द्वारा किये गये कार्यों का कर्ज व्यक्ति समाज सेवा, समाज कल्याण एवं समाज सुधार जैसे अनेक सामाजिक कार्यों के द्वारा अदा करता है। ये सब अवधारणाएं एक सी दिखती हैं पर इनमें कुछ बारीक अंतर हैं जिसे आगे की इकाइयों में विस्तार से बताया गया है।

1.1 समाज कल्याण (Social Welfare)

उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

- समाज कल्याण क्या है? समाज कल्याण का उद्देश्य क्या है?
- समाज कल्याण का उद्भव एवं विकास कैसे हुआ?
- भारत में कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए कौन–कौन से उपाय किये गए हैं?
- लोक कल्याणकारी राज्य में समाज कल्याण का औचित्य और महत्त्व क्या है?
-







-

1.1.1 समाज कल्याण का परिचय, अर्थ एवं परिभाषा (Introduction Meaning of Defination of Social Welfare)

लोक कल्याण या समाज कल्याण का अर्थ लोगों के जीवन को बेहतर जीवन स्तर उपलब्ध कराने से सम्बन्धित परिस्थितियों को सृजित करना है। सूत्र रूप में लोक कल्याण का तात्पर्य है:

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुःखभाग भवेत्।।

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सबका कल्याण हो, कोई भी दुःखी न हो। समाज कल्याण भी समाज के सदस्यों के सुखमय जीवन के उद्देश्य को पूरा करने वाली अवधारणा है। इसके अन्तर्गत दुःखी एवं पीड़ित मानवों के कष्ट के निवारण के लिए स्वप्रेरित सेवा भाव से किए किए गए कार्य समाहित होते हैं।

समाज कल्याण का परिचय

'समाज कल्याण' शब्द में व्यक्ति तथा समुदाय के सम्पूर्ण हितों की रक्षा का भाव निहित है। समाज कल्याण का लक्ष्य समाज में ऐसी स्थिति पैदा करना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह समाज में समानता और आत्मसम्मान के साथ जीवन–यापन कर सके।

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि समाज कल्याण सामाजिक सेवाओं और समस्याओं की एक ऐसी संगठित व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य रहन–सहन और स्वास्थ्य का सन्तोषजनक स्तर प्राप्त करने में व्यक्तियों तथा समूहों की सहायता करना है। इसका लक्ष्य ऐसे वैयक्तिक तथा सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करना है जो बिना समुदाय के हितों को आघात पहुँचाये व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का विकास तथा वृद्धि करने और सुखमय जीवन व्यतीत करने में सहायक हो।

समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यो एवं अन्य सामाजिक कार्यो में भेद करने के लिए यह कहा जा सकता है कि भवन–निर्माण, ऋणदाता संघ की स्थापना, गलियों को पक्का करना अथवा गाँव के लिए सहकारी समितियों का गठन करना ऐसे काम हैं, जिनकी गणना समाज कल्याण के कार्यों में नहीं होती। इसके विपरीत बाल–न्यायालय की स्थापना, वयस्क अपराधियों के लिए पैरोल की व्यवस्था, वृद्धों तथा असमर्थों के लिए आवास अथवा भिखारियों के लिए आवास की स्थापना आदि ऐसे काम हैं जिनकी गणना समाज कल्याण के कार्यों में होती है। ये समुदाय की समाज कल्याण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और उसके लिए समुदाय के साधनों का उपयोग करते हैं। किन्तु किसी गाँव में सहकारी समितिं का गठन भी यदि इस दृष्टि से किया जाये कि उससे गाँव के लोगों को अपना जीवन उन्नत करने के प्रयास में मदद मिले और वे समुदाय के अन्य साधनों का उपयोग करने की ओर अग्रसर हों तो इस कार्य को समाज कल्याण का कार्य माना जाएगा। इसी प्रकार आत्म–सहायता के आधार पर गाँव या मुहल्ले की गलियों और सड़कों को पक्का करने का कार्यक्रम भी समाज कल्याण का कार्य समझा जायेगा।

समाज कल्याण का अर्थ

समाज कल्याण का अर्थ भिन्न–भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न है, जो किसी देश के प्रशासकीय संगठनात्मक संरचना के ऐतिहासिक विकासक्रम, विकास के उद्देश्य एवं स्तर, कार्यक्रमों के प्रकार एवं उनके क्रियान्वयन की मात्रा, सरकार तथा ऐच्छिक सेक्टरों के मध्य दायित्व के विभाजन, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश आदि पर निर्भर करती है।

वर्तमान समय में समाज कल्याण सरकारों एवं ऐच्छिक संगठनों के उन प्रयासों का बोध कराता है, जिनका उद्देश्य परिवारों एवं व्यक्तियों की इस प्रकार सहायता करनी है, जिससे–

- उनकी आय एक स्वीकार योग्य स्तर पर स्थिर रहे।
- उन्हें डॉक्टरी सहायता एवं जन स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त हों।

- समुचित आवास एवं सामुदायिक विकास को बढ़ावा मिले।
- सामाजिक समन्वय में सहायता मिले।
- मनोरंजन हेतु सुविधाएं उपलब्ध हों।
- शोषित किये जाने वाले व्यक्तियों की रक्षा हेतु कानून एवं सुविधाएँ हों।
- समुदाय का दायित्व समझे जाने वाले वर्गों की देखभाल हो।

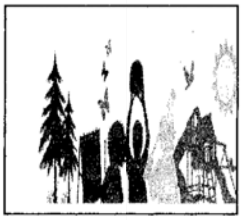
समाज कल्याण की परिभाषा

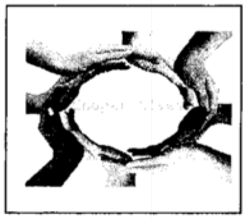
समाज कल्याण को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। सुप्रसिद्ध समाज–वैज्ञानिक **फ्राइडलैंडर** (Friedlander) के अनुसार, "समाज कल्याण सामाजिक सेवाओं एवं संस्थाओं की संगठित व्यवस्था है जिसका उद्देश्य, जीवन, स्वास्थ्य तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक सम्बन्धों के संतोषप्रद स्तर को प्राप्त करने में व्यक्तियों एवं समूहों की सहायता करना है, ताकि वे अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास एवं अपने परिवार तथा समुदाय की आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकें।

उपरोक्त समाज कल्याण की परिभाषा में दो प्रमुख तत्व हैं :–

(1) **परिवार**– जिसके द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, को मूलभूत सामाजिक संस्था के रूप में समर्थन अथवा शक्ति प्रदान करने हेतु कल्याणकारी उपायों का प्रयोग।

(2) **व्यक्ति**– की समर्थता को बल प्रदान करना, ताकि वह प्रतिकूल परिस्थितियों का समाधान कर सके।



व्यापक रूप में समाज कल्याण में समाज के सभी लोगों की भौतिक, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति सम्मिलित है।

1.1.2 समाज कल्याण की ऐतिहासिक (Historical Background of Social Welfare)

भारत का समाज अतिप्राचीन समाज है। इस समाज का लगभग 5000 वर्षों का इतिहास लिपिबद्ध किया है। भारतीय समाज को हम चार कालों में विभाजित कर सकते हैं–

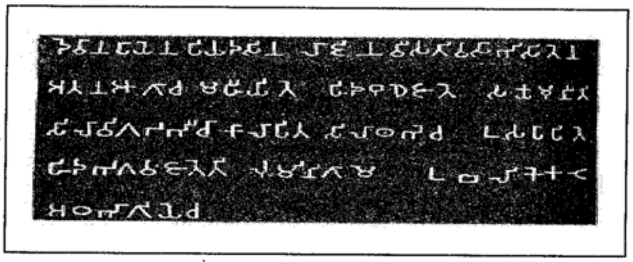
1. प्राचीन काल (लगभग 3000 ई. पू. से 700 ई. तक)
2. मध्य काल (7001 ई. से 1750 ई. तक)

3. आधुनिक काल (1751 ई. से 1947 ई. तक)

4. समकालीन काल (1947 ई. से आज तक)

प्राचीन काल

प्राचीन काल में पीड़ियों की सेवा और सहयोगिकों में अच्छे कार्य की भावना लोगों के विशिष्ट गुण रहे हैं। धर्म में भी दान, भिता देना, आपंगों को भोजन करवाना और उनकी देखभाल करना प्रमुख कार्य थे। यद्यपि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में निर्धनों, वृद्धों, निराश्रितों एवं असमर्थ लोगों की देखरेख का दायित्व शासक का बातया है। मंदिरों और आश्रमों की स्थापना, उनके निर्वाह के लिए ध्न का अर्पण संत महात्माओं के लिए आवास स्थानों का निर्माण, घुमक्कण योगियों या मंदिरों और आश्रमों के लिए भोजन, कपड़े, तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए उचित संघों के साथ–साथ स्थायी संग्रह स्थानों की स्थापना आदि का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता है। विभिन्न प्राचीन कालीन ग्रंथों से स्पष्ट हैं कि भारतीय समाज में समाज कार्य की जड़ें बहुत ही पुरानी हैं।



जनकल्याणकारी मौर्यकालीन शिलालेख कार्यों से संबंधित

मध्यकाल

मध्यकाल में भारतीय समाज में अनेक कुरीतियाँ विकसित होने लगी। जाति–पाँति, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह इत्यादि इन्हीं कुरीतियों के उदाहरा हैं। शिक्षा, धर्म के केन्द्रों में केन्द्रित हो गई इससे महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आ गई। मध्यकाल में भारतीय सामाजिक व्यवस्था को इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार चलाने के प्रयास में सामाजिक संस्थाओं में अत्यधिक परिवर्तन हुआ तथा जनता के लिए परिवार कल्याण सेवाओं की व्यवस्था में राज्यों ने भी कुछ अंशों में योगदान दिया।

आधुनिक काल (अंग्रेजी शासनकाल)

मुगल साम्राज्य के पतन, यूरोपियों के भारत आगमन तथा दक्षिण एवं बंगाल में ब्रिटिश सत्ता के अभ्युदय के साथ अंग्रेजी शासनकाल प्रारम्भ हुआ। 1857 के स्वतंन्त्राता संग्राम के पश्चात समाज कार्य की दृष्टि से भारत में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों की लहर सी आ गई थी। 19वीं शताब्दी भारतीय नवजागरण के काल के रूप में उभर कर सामने आई। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार से भारतीयों के मस्तिष्क से संकीर्णता तथा संकुचितता दूर हुई 37 एवं उनका दृष्टिकोण व्यापक हो गया। राजाराम मोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का जनक कहा जाता है, जो 1928 में ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य जाति के भेद भावों की समाप्ति, छूआ–छूत का अंत, बाल–विवाह का प्रचलन एवं सिन्ध विश्वास तथा रूढ़िवादिता को समाप्त करना था। 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह कानून पास कराने में ईश्वरचन्द विद्या सागर का महत्वपूर्ण योगदान था। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर भारतीयों को 'वेदों की ओर लौट जाओ' का नारा दिया। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सेवाग्राम में 'हरिजन सेवक संघ' तथा 'अखिल भारतीय ग्रामोघोग संघ' की स्थापना हुई।



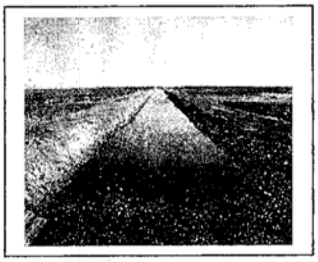
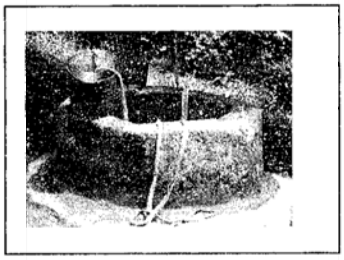



स्वातंत्रोत्तर काल (स्वतंत्रता पश्चात् समाज कार्य)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पाकिस्तान से आये विस्थापितों के पुनर्वास का दायित्व राज्य ने अपने हाथों में लेते हुए पुनर्वास मंजालय की स्थापना की। भारतीय संविधान भारत को संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है। जिसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म तथा उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता प्रदान करता है।






कल्याणकारी राज्य के मौलिक लक्ष्यों का स्पष्ट तौर पर संविधान की प्रस्तावना एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तों वाले भाग चार में पूर्ण संकेत मिलता है। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को संविधान–निर्माताओं द्वारा दिये गये मौलिक अधिकारों से संबंधित भाग तीन एवं अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों एवं पिछड़े वर्गों के बारे में विशेष व्यवस्थाओं से संबंधित भाग में भी देखा जा सकता है।

1.1.3 समाज कल्याण के उद्देश्य (Objectives of Social Welfare)

समाज कल्याण का उद्देश्य ऐसी मूलभूत अवस्थाओं को उत्पन्न करना है, जिससे समुदाय के सभी सदस्य विकास एवं आत्म–पूर्ति हेतु अपनी क्षमता का प्रयोग कर सकें। प्रायः सक्षम व्यक्ति,

परिवार या समूह अपनी आवश्यकताओं या समस्याओं का समाधान कर लेते हैं। अतः अक्षम, असमर्थ, कमजोर व्यक्ति, परिवार व समूह के सक्षमता के लिए निःस्वार्थ सेवा भाव से किया गया कार्य समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों का प्रेरणास्रोत है।

अपने आधुनिक अर्थ में समाज कल्याण जिसके अन्तर्गत सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा की विशिष्टतायें तथा मूलभूत न्यूनतम अधिकारों की गांरटी सम्मिलित है, का प्रारम्भ विकसित देशों यथा ब्रिटेन, जर्मनी, अमेरिका, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा स्केन्डिनेवियन देशों में 20वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ।

यद्यपि ब्रिटेन को समाज कल्याण एवं आदर्श कल्याणकारी राज्य की दिशा में अग्रणी होने का श्रेय प्राप्त है, तथापि अन्य देशों, जिसमें विकासशील देश सम्मिलित हैं, में समाज कल्याण के जन्म, विकास एवं वृद्धि का रोचक वर्णन पाया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में प्राचीन समय से लोक कल्याण की लम्बी परम्परा किसी न किसी रूप में चली आ रही है। दानशीलता, परोपकारिता, दयालुता एवं उदारता की परम्पराएँ सारे संसार को ज्ञात हैं। सेवा–भावना अथवा संगी–साथियों की सहायता पर आधारित आधुनिक समाज कार्य की संरचना का उदय भारत में प्राचीन काल से हो गया था।

1.1.4 समाज कल्याण की आवश्यकता (Need of Social Welfare)

ब्रिटिश सरकार भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों यथा बाल–विवाह, दहेज प्रथा, महिलाओं को उत्तराधिकार से वंचित रखना, अनुसूचित जातियों के मंदिर में प्रवेश की मनाही आदि से परिचित थी। अतएव इसने समाज को इन कुरीतियों से मुक्त करने के लिए अधिनियम बनाये, जैसे सहमति आयु कानून जिसके द्वारा नवयुवतियों की आयु 10 से 12 वर्ष तक कर दी गई जो बाद में शारदा कानून सन् 1929 तथा अन्य दूसरे कानूनों द्वारा और बढ़ा दी गयी– यह आयु सीमा महिलाओं के उत्तराधिकार, गोद लेना, कानून के सम्मुख विवाह, न्यायिक पृथक्करण एवं विवाह विच्छेद, बलिकाओं का मन्दिर को अर्पण आदि विषयों में भी लागू होती थी।

औद्योगीकरण के आगमन से श्रमिकों के लिए दुर्घटना, मुत्यु, वृद्धायु, बेरोजगारी आदि से जनित अयोग्यता के कारण क्षतिपूर्ति, कार्य समय के नियमन, कार्य करने की संतोषजनक दशा, औद्योगिक सुरक्षा आदि के रूप में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद श्रमिक संगठनों, मजदूर संघों के नेताओं, समाज सुधारकों, प्रगतिशील नियोक्ताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों को श्रमिक कल्याण हेतु समुचित सामाजिक सुरक्षा उपाय उठाने के लिए कहा गया। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने श्रम कल्याण हेतु विभिन्न अधिनियम यथा फैक्ट्री कानून 1922, श्रमिक क्षतिपूर्ति कानून 1923, भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926, व्यापार विवाद कानून पारित किये। इसी प्रकार राज्य सरकारों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व प्रसूति लाभ अधिनियम पारित किये।

ब्रिटिश सरकार ने समाज के अलाभान्वित एवं विशेषाधिकार रहित वर्ग यथा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों एवं पिछड़ी जातियों के लिए समाज कल्याण लाभ देने की दिशा में कोई

महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया, केवल उनके लिए शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था अपने अंतिम समय 1944 में की। समाज के अन्य वंचित वर्गों और अशक्तों की आर्थिक दशा को सुधारने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।







हमने जाना

- समाज कल्याण का लक्ष्य समाज में ऐसी स्थिति पैदा करना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह समाज में समानता और आत्मसम्मान के साथ जीवन–यापन कर सके। प्रायः सक्षम व्यक्ति, परिवार या समूह अपनी आवश्यकताओं या समस्याओं का समाधान कर लेते हैं। अतः अक्षम, असमर्थ, कमजोर व्यक्ति, परिवार व समूह के सक्षमता के लिए निःस्वार्थ सेवा भाव से किया गया कार्य समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों का प्रेरणास्रोत है।
- समाज कल्याण के कार्यों के दो प्रमुख आयाम हैं:–
  1. परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति।
  2. व्यक्ति की असमर्थता का निवारण।
- भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समाज कल्याणकारी कार्यों के उदाहरण प्राचीन, मध्ययुगीन व आधुनिक काल में मिलते हैं।
- भारतीय संविधान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के रूप में लोक कल्याण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकार एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तो में लोक कल्याण के तत्व समाहित हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ

सामाजिक सेवा — समाज के कमजोर वर्गो के कल्याण के लिए किये जाने वाले कार्यों, स्कीमों एवं योजनाओं को सामाजिक सेवा के अन्तर्गत समाहित किया जाता है।

सामाजिक संस्था — सामाजिक कल्याण एवं सामाजिक कार्यो को व्यवस्थित संचालन के लिये स्थापित की गई शासकीय एवं गैर–शासकीय संस्थाओं को सामाजिक संस्था के अन्तर्गत रखा जाता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. समाज कल्याण का तात्पर्य बताइए।
2. भारत के प्राचीन काल में समाज कल्याण के लिए क्या किया जाता था?





3. मध्ययुग में भारत में समाज कल्याण की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
4. भारतीय संविधान में लोक कल्याण के तत्वों का समावेश किन–किन स्थानों पर हुआ है?

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

1. समाज कार्य परिचय – प्रो0 राजाराम शास्त्री।
2. समाज कार्य का इतिहास एवं दर्शन – प्रो0 मिर्जा रफुद्दीन अहमद।
3. समाज कार्य – डॉ. जी. आर. मदन।
4. सामाजिक कार्य का परिचय – डॉ. धर्मपाल चौधरी।
5. भारतीय संविधान।

****

1.2 समाज कार्य (Social Work)

उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि –

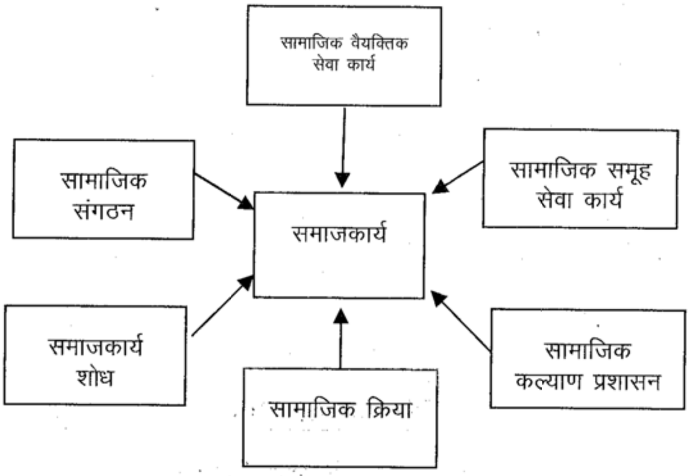
- समाज कार्य क्या है?
- समाज कार्य को समझने के लिए कौन सी बातें आवश्यक हैं?
- व्यक्तियों को समाज कार्य के बारे में आप कैसे समझा सकते हैं?
- समाज कार्य के स्वरूप कौन–कौन से हैं?

1.2.1 समाज कार्य की अवधारणा, अर्थ एवं परिभाषा (Concept of Social Work, Meaning and Definition)

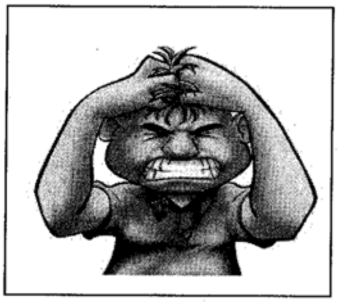
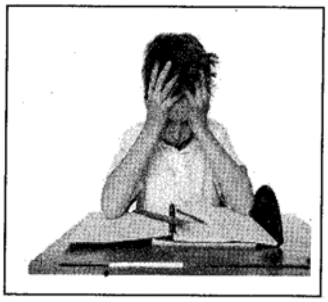
मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अपने विकास लिए वह समाज पर निर्भर है। 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है'। मानव समाज की निम्नतम इकाई व्यक्ति होता है और वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी सम्बन्ध स्थापन की प्रक्रिया में वह अनेक प्रकार का व्यवहार स्थापित करने का प्रयास करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति समाज में रहकर अपनी मनो–सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज के अन्य सदस्यों से व्यवहार एवं सम्बन्ध स्थापित करता है। मुख्य रूप से उसका सम्बन्ध तीन सामाजिक स्तरों पर देखा जाता है :–

1. व्यक्ति का व्यक्ति के साथ सम्बन्ध
2. व्यक्ति का समूह के साथ सम्बन्ध तथा
3. समूह का समूह के साथ सम्बन्ध

किसी भी स्तर पर स्थापित होने वाले मानवीय सम्बन्धों का प्रमुख उद्देश्य आवश्यकताओं की पूर्ति होता है। परन्तु सर्व विदित है कि किसी भी समय में कोई भी ऐसा व्यक्ति किसी भी समाज में नहीं पाया जा सकता जिसकी शत प्रतिशत आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति हो सकी हो। आवश्यकताओं की सन्तुष्टि न होने के कारण व्यक्ति में चिन्ता, कुण्ठा, हीनता, आर्थिक कठिनाई, असमायोजन तथा सम्बन्ध सम्बन्धी अनेक मनो–सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का उद्भव होना स्वभाविक है, इनके समाधान के लिए मानव अपनी क्षमता, ज्ञान एवं साधनों के अनुसार सतत् प्रयास करता रहा है किन्तु समस्याओं का समाधान स्वयं करने में असमर्थ हो जाता है। अतः वह अन्य व्यक्तियों या समाज से सहयोग की अपेक्षा रखता है।



उपरोक्त कारणो से अपनी प्रकृति एवं स्वभाव से आदिम युग से ही मानव की प्रवृत्ति सहयोगी रही है, जिससे प्रेरित होकर उसने समस्या–ग्रस्त व्यक्तियों की समस्या के निराकरण के लिए सहायता प्रदान करने में हर संभव प्रयत्न किया है। मानव सभ्यता के आरम्भ से प्रत्येक समाज में इन समस्याओं का समाधान एवं निराकरण करने का प्रयास किया जाता रहा है। समाज कार्य इसी प्रकार का प्रयास है जिसका जन्म धार्मिक प्रेरणाओं से हुआ और जिसने बाद में एक व्यवसाय का रूप धारण किया।


इस प्रकार मनोसामाजिक समस्याओं के समाधान और निदान का जो वैज्ञानिक तरीका है, उसे हम समाज कार्य कहते हैं। इसका विकास आधुनिक समाज की जटिल समस्याओं के संदर्भ में हुआ है। वर्तमान स्वरूप में उद्भव से पूर्व इसका स्वरूप धर्म, दान तथा परोपकार के लिए की जाने वाली सेवाओं के रूप में जाना जाता था। अतः समाज कार्य की आधुनिक अवधारणा को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक विकास क्रम से सम्बद्ध इससे मिलते–जुलते किन्तु पृथक तात्पर्य रखने वाले विभिन्न प्रत्ययों की चर्चा आवश्यक है–

1. **धर्मार्थ सेवा**— परम्परागत अवधारणा के अनुसार, धार्मिक भावना से प्रेरित होकर निर्धन व्यक्तियों को दान देना एक स्वैच्छिक समाज कार्य रहा है। इसी भावना से प्रेरित होकर मिशन एवं मिशनरी कार्यों का उद्भव एवं विकास हुआ। इसके अंतर्गत अनेक क्रिश्चियन मिशन, रामकृष्ण मिशन, बिड़ला फाउण्डेशन इत्यादि ने महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किए।

2. **समाज कार्य और श्रमदान**— समाज कार्य को प्रायः श्रमदान के साथ भी सम्बद्ध किया जाता है। श्रमदान में व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों के हित के लिए निष्काम भावना से अपने श्रम का समर्पण करता है। परन्तु श्रमदान को समाज कार्य कहना उचित नहीं है। श्रमदान तथा समाज कार्य में केवल लक्ष्य का अन्तर नहीं बल्कि कार्य पद्धति तथा दर्शन की दृष्टि से भी भिन्नता है। सामाजिक कार्यकर्ता के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण आवश्यक है। व्यक्ति की समस्या को हल करने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता की कार्य पद्धति श्रमदान करने वाले व्यक्ति के विपरीत प्रायः मनोवैज्ञानिक होती है।

3. **समाज कार्य और परोपकार**— समाजकार्य को अनेक बार परोपकार भी कहा जाता है। परोपकार प्रायः स्वार्थ रहित तथा श्रम रहित कार्य है। परन्तु समाज कार्य को पूर्णतः स्वार्थ रहित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि ऐच्छिक समाजसेवी संस्थाओं द्वारा, समाज कल्याण के विभिन्न कार्य बिना किसी पारिश्रमिक के किये जाते हैं, किन्तु पेशेवर समाजसेवी के लिए इस तथ्य को लागू नहीं किया जा सकता। पेशेवर समाजसेवी के अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व होते हैं। उसे परिवार के आश्रित सदस्यों की देखभाल करनी होती है। अतः पेशेवर समाजसेवी उस संस्थान द्वारा वेतन प्राप्त करता है, जिसके द्वारा उसकी नियुक्ति की गई है।

4. **समाज कार्य और सहायता**— समाजकार्य को अनेक बार दुर्घटनाग्रस्त कमजोर एवं असहाय व्यक्तियों को सहायता पहुंचाने वाला कार्य भी कहा जा सकता है। जैसे—बाढ़, अकाल इत्यादि विपत्तियों के समय लोगों की सहायता करना आवश्यक है। सामाजिक कार्यकर्ता इन विपत्तियों के समय इन लोगों की सहायता करता है किन्तु इस कार्य को समाज कार्य नहीं कहा जा सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि समाज कार्य अस्थायी तथा सामयिक नहीं होता। यह पेशेवर संबंधों के उपयोग द्वारा सहायता करने का स्थायी कार्यक्रम है। समाज में जिस प्रकार व्यक्ति की असमर्थता किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है, उसी प्रकार समाज कार्य भी समाज के लिए सदैव आवश्यक रहा है। किसी दुर्घटना विशेष की समाप्ति हो जाने पर सहायता कार्य की आवश्यकता समाप्त हो जाती है, लेकिन समाज कार्य की आवश्यकता समाप्त नहीं होती।

5. **समाज कार्य और समाज कल्याण**— जैसा कि मॉड्यूल की पिछली इकाई में बताया जा चुका है कि समाज कल्याण का आशय सामाजिक सेवाओं और संस्थाओं की एक संगठित व्यवस्था से है। इसका मुख्य कार्य सन्तोषजनक जीवन स्तर को प्राप्त करने के लिए, लोगों की सहायता करना है। समाज कल्याण सेवाओं का संगठन, व्यक्ति अथवा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है। **हैरी एम0 कोसीडी** के अनुसार, ''समाज कल्याण के अन्तर्गत वे संगठित क्रियाएं आती हैं जो संरक्षण, सुरक्षा तथा मानवीय साधनों की प्रगति से संबन्धित है। इसके विपरीत समाज कार्य, मानव संबंधों के वैज्ञानिक ज्ञान तथा कुशलता पर आधारित एक व्यावहारिक सेवा है। यह विज्ञान तथा कला दोनों है।

समाज कार्य से मिलते—जुलते उपरोक्त शब्दों का तात्पर्य समाज कार्य से किस प्रकार भिन्न है, इसको जानने के पश्चात् आइये अब हम जानते हैं कि समाज कार्य क्या है?

समाज कार्य की अवधारणा

समाज कार्य समस्याग्रस्त व्यक्ति को वैज्ञानिक ढंग से अपनी समस्या का समाधान करने की क्षमता विकसिंत करने में सहायता प्रदान करता है ताकि वह स्वयं इस योग्य बन सके कि उस समस्या से उसे छुटकारा मिल सके। समाज कार्य शब्द का प्रयोग श्रमदान, समाज कल्याण, समाज सुधार, सामाजिक सुरक्षा आदि के रूप में भी किया जाता है। जिससे इसके अर्थ के बारे में भ्रांति पैदा हो जाती है। श्रमदान का अर्थ— वह स्वैच्छिक कार्य है जो समुदाय की समस्याओं जैसे सार्वजनिक मार्गों या सड़कों का निर्माण, तालाब की खुदाई या सफाई, सार्वजनिक सफाई इत्यादि के समाधान में सहायक होता है। यह समाज कार्य नहीं है क्योंकि इसमें किसी वैज्ञानिक ज्ञान अथवा प्राविधिक निपुणताओं का प्रयोग नहीं किया जाता है जो कि समाज कार्य का प्रमुख आधार है।

'समाज कल्याण' सेवाओं एवं संस्थाओं की एक ऐसी संगठित व्यवस्था है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदायों को आर्थिक विकास के अवसर उपलब्ध कराना तथा अच्छा स्वास्थ्य एवं संतोषजनक जीवन स्तर प्रदान करना है। जबकि 'समाज सुधार' से अभिप्राय उन परिवर्तनों से है जिनका उद्देश्य समाज में प्रचलित कुरीतियों एवं बुराइयों जैसे— अस्पृश्यता, दहेज प्रथा, बाल—विवाह इत्यादि को दूर करना है। इन दोनों में वैज्ञानिक ज्ञान एवं शविधिक निपुणताओं का प्रयोग नहीं किया जाता है।

समाज कल्याण तथा समाज सुधार के विपरीत समाज कार्य एक व्यवसायिक सेवा है जिसमें समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रविधिक निपुणताओं के प्रयोग द्वारा किया जाता है। इसलिए आजकल समाजकार्य में एक विशिष्टि व्यवसायिक एवं संस्थानिक प्रकृति का रूप धारण कर लिया है। इसमें प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता समाजशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो के प्रयोग द्वारा व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदायों की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं।

कई बार सामाजिक सुरक्षा एवं समाज कार्य को भी एक ही समझ लिया जाता है जो कि ठीक नहीं है। सामाजिक सुरक्षा से अभिप्राय समाज द्वारा विकसित उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा समाज किसी आकिस्मकताओं जैसे मातृत्व, निर्धनता, बेराजगारी, विकलांगता, वृद्धावस्था इत्यादि के शिकार व्यक्तियों को आर्थिक अथवा सेवाओं क माध्यम से सहायता प्रदान करता है। सरकार द्वारा महिलाओं को मातृत्व लाभ सामाजिक सुरक्षा के अंतर्गत आता है।

समाज सेवा की परिभाषा देते हुए, हैरी. एम. कैसिडी लिखते हैं कि ''वे संगठित कार्य जिनका सीधा सम्बंध प्रथाओं या रूढ़ियों से है और जो मानवीय साधनों की रक्षा और उन्नति का काम करते हैं समाज सेवा है।'' इनमें सामाजिक सेवा, सामाजिक सहायता, सामाजिक बीमा, शिशु कल्याण, अपराधियों का सुधार, मानसिक स्वास्थ्य, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, श्रमिकों की सुरक्षा तथा गृह एवं निवास सम्बंधी कार्य भी सम्मिलित है। समाज सेवा समाज कल्याण से विस्तृत अवधारणा है।

समाज कार्य की परिभाषाएँ–

प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार, ''मनोसामाजिक समस्याओं के निदान और समाधान का जो नवीनतम तरीका विकसित हुआ है, वह समाज कार्य है।''

ऐलिस चेनी (1926) के अनुसार समाज कार्य में ''वह सब ऐच्छिक प्रयास सम्मिलित हैं, जिनका उद्देश्य उन आवश्यकताओं की संतुष्टि करना है जिनका संबंध सामाजिक संबंधों से है और जो वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं।''

फ्रेडलैण्डर(1955) के अनुसार, ''समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है, जिसका आधार वैज्ञानिक ज्ञान और मानव सम्बन्धों में निपुणता है। यह व्यक्तियों की अकेले या समूह में सहायता करता है जिससे वे सामाजिक एवं वैयक्तिक संतुष्टि एवं स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके।''

इंडियन कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क (1957) के अनुसार, ''समाज कार्य एक कल्याणकारी क्रिया है, जिसका आधार मानवोचित दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रावैधिक निपुणताओं से है और जिसका उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों या समुदायों की सहायता करना है, जिससे वह एक सुखी और सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।''

आर्थर फ्रिंक के अनुसार, ''समाज कार्य सेवाओं का ऐसा विधान है जो व्यक्ति को एकाकी या सामूहिक रूप में वर्तमान या भावी मनोसामाजिक बाधाओं को निपटाने में सहायता देता है जो उन्हें समाज में पूरा या प्रभावशाली रूप से भाग लेने से रोकती हैं।''

समाज कार्य की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि 'समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है, जिसका आधार मानव संबंधों के ज्ञान और संबंधों में निपुणता से है और जिसका सम्बन्ध अभ्यन्तर–वैयक्तिक एवं अन्तर वैयक्तिक समायोजन संबंधी समस्याओं से है, जो वैयक्तिक, सामूहिक और सामुदायिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है।

समाज कार्य की विशेषतायें (Characteristics of Social Work)

(1) इसका आधार एक विशेष वैज्ञानिक ज्ञान है जिनका सम्बन्ध मानव व्यवहार और उसके परिवर्तन से है। वास्तव में समाज कार्य की मुख्य विशेषता, जो इसे अन्य व्यवसायों से भिन्न करती है, यही है कि इसमें मानव व्यवहार का ज्ञान और उसका विश्लेषण करने और उसमें परिवर्तन करने की निपुणता पाई जाती है। इसीलिए प्रत्येक समाज कार्यकर्ता एक अभ्यासकर्ता है और इस सम्बन्ध में उसकी तुलना एक शारीरिक रोग चिकित्सक से की जाती है। एक शारीरिक रोग चिकित्सक शारीरिक रोग या असंन्तुलन की चिकित्सा करता है और एक समाज कार्यकर्ता मनोसामाजिक रोग या असंन्तुलन की चिकित्सा करता है। जिस प्रकार एक शारीरिक रोग चिकित्सक का अपने रोगी के प्रति उत्तरदायित्व होता है उसी प्रकार एक समाज कार्यकर्ता का भी अपने सेवार्थी के प्रति उत्तरदायित्व है।

(2) समाज कार्य विशेष प्रकार से उन समस्याओं की ओर ध्यान देता है जिनका सम्बन्ध मनुष्य के आन्तरिक एवं बाहरी समायोजन से है।

समायोजन दो प्रकार का होता है–

- अभ्यन्तर–वैयक्तिक समायोजन (Intra-personal Adjustment)।
- अन्तर–वैयक्तिक समायोजन (Inter-personal Adjustment)।

अभ्यन्तर वैयक्तिक समायोजन (Intra-personal Adjustment)

अभ्यन्तर वैयक्तिक समायोजन का अर्थ है किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए उसके मनोवृत्तियों और मूल्यों के मध्य समन्वय, एकीकरण एवं संन्तुलन स्थापित करने के लिये प्रयास करना। इसका संबंध मनुष्य की अहं शक्ति से होता है और मनोवृत्ति–सम्बन्धी एकीकरण एवं सन्तुलन के लिए अहं का शक्तिशाली होना आवश्यक है।

अन्तर वैयक्तिक समायोजन (Inter-personal Adjustment)

अन्तर वैयक्तिक समायोजन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध से है।

(3) समाज कार्य अपूर्ण आवश्यकताओं की संतुष्टि पर बल देता है। आवश्यकताएँ जब पूरी नही होती तो वे समस्या का रूप धारण कर लेती हैं और आवश्यकताओं के पूरा न होने के कारण व्यक्ति का समायोजन प्रभावित होता है। अतः समाज कार्य व्यक्तियों की सहायता इस रूप में करता है कि वे अपनी शक्तियों और सामाजिक साधनों के पूर्ण प्रयोग द्वारा आवश्यकताओं की संतुष्टि कर सके।

समाज कार्य में इन तीन प्रकार की ,आवश्यकताओं की संन्तुष्टि के लिए तीन विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है:–

1. वैयक्तिक आवश्यकताओं के लिए सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य।
2. सामूहिक आवश्यकताओं के लिए सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य।
3. सामुदायिक आवश्यकताओं के लिए सामुदायिक संगठन।

समाज कार्य व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए सामाजिक साधनों का एकीकरण और समन्वय क़रता है और उन्हें गतिमान करता है। समाज कार्यकर्ता को उन संस्थाओं, कार्यक्रमों और योजनाओं का पूरा ज्ञान होता है, जो आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं। वह आवश्यकताओं और साधनों में समायोजन स्थापित करने की निपुणता रखता है और साधनों को विकसित करने की विधियों का भी ज्ञान रखता है।

समाज कार्य समस्याओं का निराकरण भी करता है और विरोध भी। वह इस बात का प्रयत्न करता है। एक ओर तो समस्याओं को सुलझाया जाये और दूसरी ओर उन परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित किया जाये जो समस्याओं को जन्म देती हैं। समाज कार्य में निरोधात्मक कार्यक्रमों का बड़ा महत्व समझा जाता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि समाज कार्य व्यक्तियों, समूहो और समुदाय में आत्मनिर्देशन और आत्मनिर्भरता उत्पन्न करता है और उन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता देता है। जिनके कारण असामंजस्य की समस्या उत्पन्न होती है।

1.2.2 समाज कार्य का इतिहास एवं कार्य क्षेत्र (History and Field of Social Work)

व्यवसायिक समाज कार्य का इतिहास

इग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में पहले चर्च के माध्यम से ही जन–कल्याणकारी कार्य किये जाते थे। धीरे–धीरे स्थिति बदली और जन–सहायता को विधिक रूप प्रदान किया जाने लगा। इंग्लैण्ड में 1536 में एक कानून बना जिसमें निर्धनों की सहायता के लिए कार्य–योजना बनायी गयी। अ्टठारहवीं सदी में औद्योगिक क्रांति के बाद इंग्लैण्ड और अमेरिका में सरकारों द्वारा निर्धनों व अशक्तों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए कई कानूनों का निर्माण किया गया। व्यक्तियों का मनोसामाजिक पक्ष सुधारने के हेतु 1869 में लंदन चैरिटी संगठन तथा अमेरिका में 1877 में चैरिटी ऑर्गनाइजेशन सोसाइटी ने पहल ली। इन संस्थानों ने समुचित सहायता करने के लिए जरूरतों की पड़ताल तथा संबंधित व्यक्तियों का पंजीकरण करना प्रारम्भ किया। इस प्रक्रिया में मनोसामाजिक स्थिति सुधारने के लिए बातचीत करना एवं भौतिक सहायता को भी शामिल किया। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसके जरिये संस्था के कार्यकर्त्ता अपने पास आये व्यक्ति अर्थात् सेवार्थी को स्वावलम्बी बनाते थे। धीरे–धीरे इस प्रक्रिया ने सुचिंतित प्रणालीबद्ध रूप ग्रहण कर लिया। 1887

में न्यूयॉर्क में कार्यकत्ताओं को इन कामों के लिए प्रशिक्षण देना प्रारम्भ किया गया। अमेरिका में इस प्रकार के प्रशिक्षण हेतु 1910 में दो वर्ष का पाठ्यक्रम शुरू हुआ।

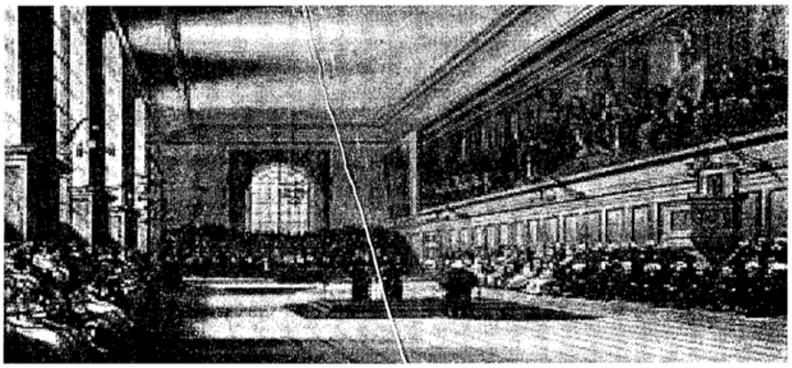
भारत में भी समाज कल्याण हेतु राजाओं द्वारा दान देने का चलन था, यज्ञ करवाये जाते थे एवं धर्मशालाओं इत्यादि का निर्माण होता था। अट्ठारहवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप होने वाले सुधार कार्यक्रमों ने भारतीय जनमानस को प्रभावित किया और ईश्वरचंद विद्यासागर तथा राजा राममोहन राय वगैरह के प्रयासों द्वारा विधवा विवाह प्रारम्भ हुआ और सती प्रथा पर रोक लगी। इसके अतिरिक्त गोपाल कृष्ण गोखले, एनी बेसेंट आदि ने भारत में आधुनिक समाज सुधारों को नयी दिशा दी। 1905 मे गोखले ने सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया की स्थापना करके स्नातकों को समाज सेवा के लिए प्रशिक्षण देना प्रारम्भ किया। इन प्रशिक्षुओं को वेतन भी दिया जाता था। इस तरह इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा भारत में समाज–कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु समाज–कार्य की नींव पड़ी जिसके तहत सामाजिक कार्यकर्त्ता व्यक्ति की पूर्ण सहायता हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करता है। 1936 में भारत में समाज–कार्य के शिक्षण एवं प्रशिक्षण हेतु बम्बई में सर दोराब जी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क की स्थापना हुई। आज देश में सौ से भी अधिक संस्थानों में समाज–कार्य की शिक्षा दी जाती है। समाज–कार्यकर्त्ता केवल उन्हीं को कहा जाता है जिन्होंने समाज–कार्य की पूरी तरह से पेशेवर शिक्षा प्राप्त की हो, न कि उन्हें जो स्वैच्छिक रूप से समाज कल्याण का कार्य करते हैं। स्वैच्छिक समाज–कल्याण के प्रयासों को समाज–सेवा की संज्ञा दी जाती है और इन गतिविधियों में लगे लोग समाज–सेवी कहलाते हैं।

समाज–कार्य के तहत व्यावसायिक दृष्टि से विकसित छह प्रणालियों के माध्यम से लोगों की मदद की जाती है। ये हैं सामाजिक वैयक्तिक कार्य, समूह समाज–कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज–कल्याण, प्रशासन, समाज–कार्य शोध और सामाजिक क्रिया।

सामाजिक वैयक्तिक कार्य के तहत एक समय में केवल एक व्यक्ति ही सेवा–कार्य का केन्द्र होता है। इसमें व्यक्ति की आंतरिक एवं बाहरी क्षमताओं का पता लगाकर उसका उसके पर्यावरण से समायोजन स्थापित कराया जाता है। समूह समाज–कार्य में व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है। हालांकि समूह–कार्य एक प्राचीन विधा होने के बावजूद इसे व्यावसायिकता के प्रतिमानों पर विकसित करके नयी तकनीक से सम्पन्न किया गया है। इसमें समूह में लोकतांत्रिक गुणों का विकास कर नेतृत्व तैयार किया जाता है ताकि समूह के सदस्य अपनी समस्याओं का समाधान लोकतांत्रिक तरीके से कर सकें। समूह–कार्यकर्त्ता संस्था के माध्यम से समूह का विकास विभिन्न स्तरों पर करता है। वह सदस्यों में मैं के बजाय हम की भावना का विकास करता है। सामुदायिक संगठन एक प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य किसी समुदाय या समूह में लोगों द्वारा आपस में मिल कर कल्याण कार्यों की योजना बनाकर उसे क्रियान्वित करना है। समुदाय एक नगर का, क्षेत्र का या पूरा नगर, राज्य, देश या सभी कुछ हो सकता ह। समाज–कार्यकर्ता समुदाय को संसाधनों की खोज करने में सहायता करता है एवं मसस्या विशेष के समाधान हेतु उनका मार्गदर्शन करता है। समाज–कल्याण प्रशासन का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसके तहत समाज कल्याण क्षेत्र की सार्वजनिक और निजी संस्थाओं का संगठन एवं उनका प्रबंधन किया जाता है।

समाज–कार्य को इसलिए एक व्यवसाय की संज्ञा दी जाती है क्योंकि वह मुख्यतः यह एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध ज्ञान आधारित है। इसकी अपनी कुछ विशेष प्रणालियाँ, प्रतिविधियाँ तथा यंत्र हैं। विश्व भर में इसके शिक्षण एवं प्रशिक्षण हेतु संस्थाओं की स्थापना हो चुकी है और निरंतर इनमें वृद्धि हो रही है। समाज–कार्य के विकास के साथ–साथ इसके व्यावसाकिय संगठन भी बन रहे हैं, जिनसे इसका स्तर ऊँचा उठ रहा हैं समाजकर्ताओं के लिए बहुत आवश्यक है। समाज–कार्य भी समाज–विज्ञान है परन्तु इसकी प्रकृति अन्य विषयों से भिन्न है। इसकी विशेषताएँ ही इसे अन्य समाज–विज्ञानों से अलग करती हैं। समाज–कार्य प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक

अनुकूलन के मार्ग में आने वाली सामाजिक एवं मनोवैनिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान प्रस्तुत करता है।



भारत में समाजकार्य की उत्पत्ति एवं विकास

भारतीय समाज सदा से ही एक परम्परागत समाज रहा है। परन्तु परम्पराएं समय के परिवर्तन के साथ परिवर्तित भी होती रही हैं। भारत में समाज कल्याण हेतु दान देने का चलन था एवं धार्मिक प्रेरणा के आधार पर सामाजिक सेवा जैसे-- नहर बनवाने, पेड़ लगवाने, मंन्दिर बनवाने, आश्रम बनवाने, विद्यालय, चिकित्सालय आदि स्थापित करने और अन्य सार्वजनिक कल्याण का कार्य किये जाने के कार्य किए जाते थे। परन्तु इन सब कार्यों का प्रमुख उद्देश्य आवागमन से मुक्ति प्राप्त करना एवं सामाजिक सम्मान प्राप्त करना था।

भारत में जब मुसलमान आये तो उन्होंने भी अपने धर्म के आदेशानुसार दान–पुण्य पर अधिक धन व्यय किया। इस्लाम में जकात एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रति वर्ष अपनी सम्पत्ति, विशेष प्रकार के धन या स्वर्ण का ढाई प्रतिशत भाग जकात के रूप में व्यय करना आवश्यक है। जकात की रकम निर्धन एवं अभावग्रस्त व्यक्तियों पर व्यय की जाती है। इसके अतिरिक्त इस्लाम में एक संस्था खैरात की भी है जिसके अनुसार अभावग्रस्त व्यक्तियों की आर्थिक सहायता व्यक्तिगत रूप से की जाती है।

भारत में काफी समय से पारसी लोग भी रहते थें। पारसियों के धर्म में भी दान को बड़ा महत्व दिया गया है। पारसियों ने यहाँ धर्मशालायें, तालाब, कुंएँ, विद्यालय आदि बनवाये। उन्होंने बहुत से प्रन्यास स्थापित किये जिनमें से एक प्रसिद्व प्रन्यास "बाम्बे फारसी पंचायत ट्रस्ट फण्ड" है। इस प्रन्यास के उद्देश्यों में पारसी विधवाओं की सहायता, पारसी बालिकाओं का विवाह सम्बन्धी सहायता, नेत्रहीन पारसियों की सहायता, निर्धन पारसियों की सहायता और धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी सहायता सम्मिलित हैं।

1780 में बंगाल में सिरामपुर मिशन स्थापित हुआ। इस मिशन में हिन्दू सामाजिक ढांचे में सुधार लाने का प्रयास किया गया। उदाहरणस्वरूप इसने बाल विवाह, बहुविवाह, बालिका–हत्या, सती एवं विधवा विवाह पर निषेध के विरूद्व आवाज उठाई। इसके अतिरिक्त इस मिशन ने जाति प्रथा के विरूद्व भी प्रचार किया। अपने इस विचारों को क्रियाशील रूप प्रदान करने हेतु इस मिशन ने अनेक समाज कल्याण संस्थायें स्थापित की जिनके द्वारा अभावग्रस्त एवं पीड़ित लोगों की सहायता की जाती थी।

कुछ समय पश्चात् ही लोक हितैषी व्यक्तियों, अन्य धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य ने इस क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ किया। 18वीं शताब्दी के अन्त में क्रिश्चियन मिशनों का प्रचार भारत के विचारशील लोगों के लिए एक चुनौती थी। अतः इस चुनौती का सामना करने के लिए अनेक लोग तैयार हुए। इस प्रकार के एक समाज सुधारक राजा राममोहन राय थे, जिन्होंने भारत की कुप्रथाओं में सुधार लाने का प्रयास किया। उन्होंने विशेष रूप से जाति प्रथा और सती प्रथा का विरोध किया और अनेक शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की। 18वीं और 19वीं शताब्दी में भारत में समाज सेवा पद्धति के मुख्य उद्देश्य दो थे–

1. भारत के सामाजिक ढांचे को पुनर्जीवित करना और विदेशी धर्म एवं संस्कृति से सुरक्षित रखना।
2. समाज सेवी संस्थायें स्थापित करना जिनसे भारत के निवासियों को क्रिश्चियन मिशनों द्वारा स्थापित सामाजिक सेवाओं के प्रयोग की आवश्यकता न रह जाये।

इस प्रकार यहाँ की समाज सेवा पद्वति को क्रिश्चियन मिशनों द्वारा स्थापित सामाजिक सेवाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रुप से प्रोत्साहन मिला।

1897 में स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन स्थापित किया। इस मिशन का संगठन क्रिश्चियन मिशनों के संगठन के नमूने पर हुआ। ब्रह्म समाज और आर्य समाज से भी अधिक रामकृष्ण मिशन ने समाज सेवा के कार्य किये।


सीरमपुर मिशन


रामकृष्ण मिशन


क्रिस्शन मिशन

व्यवसायिक समाजकार्य का प्रशिक्षण

भारत में प्राचीन काल से ही समाज सेवा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता रहा है, परन्तु यह प्रशिक्षण एक नैतिक वातावरण में और अनौपचारिक रूप से दिया जाता था। औपचारिक रुप से व्याख्यान एवं व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध प्राचीन समय में नहीं था। 20वीं शताब्दी में बम्बई में पहली बार इस प्रकार का प्रयास किया गया जबकि वहाँ सोशल सर्विस लीग की स्थापना हुई। इस संस्था ने स्वयं सेवा के लिए अल्पावधि वाले पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य स्वयंसेवकों को समाज सेवा के लिए तैयार करना था।

भारत में 1936 के पहले समाज कार्य को एक ऐच्छिक क्रिया समझा जाता था। 1936 में पहली बार समाज कार्य की व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक संस्था सर दोराबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क के नाम से स्थापित हुई। इस समय इस बात की स्वीकृति भारत में हो चुकी थी कि समाज कार्य कारने के लिए औपचारिक शिक्षा अनिवार्य है। तत्पश्चात् इस विद्यालय का नाम टाटा इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइंस हो गया और अब भी यह इसी नाम से प्रसिद्ध है।

इसके बाद काशी विद्यापीठ, वाराणसी, दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क, इन्दौर स्कूल ऑफ सोशल वर्क, निर्मला निकेतन, मुम्बई, लखनऊ विश्वविद्यालय, बैंगलौर, चेन्नई, श्री निकेतन, उदयपुर, स्कूल ऑफ सोशल वर्क इत्यादि संस्थानों एवं स्थानों पर समाज कार्य के प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये। वर्तमान में देश के विभिन्न भागों में सैकड़ों समाज कार्य विभाग, शिक्षण, शोध एवं प्रशिक्षण कार्यों में लगे हुए हैं।







समाज सेवा का सर्वप्रथम क्षेत्र

भारत में 18 वीं शताब्दी से समाज सेवा का सर्वप्रथम क्षेत्र शिशु कल्याण रहा है। 18वीं शताब्दी से ही यहाँ अनाथालय एवं निःशुल्क विद्यालय स्थापित किये गये। 19वीं शताब्दी में धर्मार्थ चिकित्सालय ऐच्छिक क्षेत्र में स्थापित किये गये। 1930 के उपरान्त विशेष प्रकार से गांधी जी के नेतृत्व में हरिजन कल्याण एवं प्रौढ़ शिक्षा का भी कार्य आरम्भ हुआ।

20वीं शताब्दी में भारत में ऐच्छिक समाज सेवी संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हुई। अनाथालयों और शिशु सदनों के अतिरिक्त 20वीं शताब्दी के आरम्भ में नेत्रहीनों के लिए विशेष विद्यालय स्थापित हुए।

भारत में विकलांग बालकों के लिए कल्याण कार्य बहुत देर से आरम्भ हुआ। पहली बार 1947 में एक ऐच्छिक संस्था स्थापित हुई। इस संस्था के कार्यों से प्रभावित होकर भारत के अनेक चित्सालयों में विकलांग चिकित्सा विभाग स्थापित हुए।

भारत में इस समय ऐच्छिक समाज कल्याण संस्थाओं की एक बडी संख्या पाई जाती है। इन संस्थाओं के कार्यों में सहयोग एवं समन्वय स्थापित करने के लिए एक संस्था इण्डियन कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क के नाम से स्थापित हुई। यह संस्था एक वार्षिक सम्मेलन करती है, जिसमें देश के सभी स्थानों से संस्थाओं के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। परन्तु यह संस्था समन्वय और संगठन लाने में अभी तक असफल रही है। हाल ही में इस संस्था का नाम इण्डियन कौन्सिल ऑफ सोशल वेल्फेयर हो गया है।

1952 में एक नवीन संस्था इण्डियन कौन्सिल फार चाइल्ड वेल्फेयर के नाम से स्थापित हुई। इसका उद्देश्य एक ओर तो शिशु कल्याण के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना और दूसरी ओर ऐच्छिक संस्थाओं एवं राज्य के बीच सम्पर्क स्थापित करना है।

समाज कल्याण में राज्य की भूमिका

राज्य ने सर्वप्रथम स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में समाज सेवा प्रदान करना आरम्भ किया। परन्तु यह सेवायें बहुत ही सीमित रूप में प्रदान की जाती रही। अतः समस्त नागरिक इन सेवाओं से लाभान्वित नहीं हो सके।

प्रसूति तथा शिशु कल्याण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 20 वीं शताब्दी में लेडी डफरिन फंड स्थापित किया गया। आरम्भ में इण्डियन रेड क्रास एवं विशिष्ट प्रसूति तथा शिशु कल्याण समितियों ने इस क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया। शनैः–शनैः राज्य सरकार और नगरपालिकाओं ने इन सेवाओं का उत्तरदायित्व स्वीकृत कर लिया।

भारत के शिक्षा मंत्री मंडलों ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। इनकी क्रियाएँ विशेष प्रकार से तीन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण रही हैं–

1. नेत्रहीनों की रक्षा।
2. सामाजिक शिक्षा।
3. समाज सेवकों का प्रशिक्षण।

शिक्षा मंत्री मंडलों एवं विभागों ने शारीरिक एवं सामाजिक रूप से असमर्थ व्यक्तियों की सेवा के लिए बनाई गयी संस्थाओं की सहायता और निरीक्षण का उत्तरदायित्व स्वीकृत कर लिया है। यह संस्थाएँ असमर्थ व्यक्तियों की शारीरिक रक्षा के अतिरिक्त उनकी शिक्षा एवं पुनर्वास का भी प्रबन्ध करती है।

विस्थापित व्यक्तियों का पुनर्वास

राज्य द्वारा विस्थापित व्यक्तियों का आर्थिक पुनर्वास किया गया। 1947 के देश विभाजन के उपरान्त विस्थापितों व्यक्तियों की अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं। इनकी विभिन्न

समस्याओं की सुलझाने के लिए राज्य की ओर से भूमि, व्यवसाय, गृह एवं शिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध किया गया।

अनुसूचित जाति एवं आदिम जाति कल्याण

भारतीय संविधान के अनुसार एक कमिश्नर फार शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड ट्राइब्स की नियुक्ति की गई, जिसका कार्य इस बात की व्यवस्था करना है कि एक निश्चित समय के भीतर यह जातियाँ राज्य के प्रजातंत्रवादी जीवन में अन्य व्यक्तियों के साथ बराबर का भाग ले सके। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्हें शिक्षा एवं आर्थिक उत्थान की सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं।

1955 में भारत सरकार ने काका साहब कालेलकर की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग नियुक्त किया जिसने पिछड़े हुए वर्गों की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं के सुधार के लिए सुझाव दिये और पिछड़ेपन के कारणों को स्पष्ट किया।







1955 में ही अस्पृश्यता निवारण अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार स्पृश्यता को वैधानिक रूप में अपराध समझा गया और इसके लिए दण्ड निर्धारित क़र दिया गया।

ग्रामीण कल्याण कार्य

भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त कम्यूनिटी प्रोजेक्ट ऐडमिनिस्ट्रेशन नाम की एक नवीन संस्था स्थापित हुई। इसकी स्थापना में प्लानिंग कमीशन का प्रमुख योगदान था। इस प्रशासन ने ग्रामीण जिलों को प्रोजेक्ट एरिया एवं ब्लाक्स का रूप दिया और इनमें विस्तृत रूप से आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के विकास का प्रयत्न किया। इसका नाम कुछ समय उपरान्त कम्युनिटी डेवलपमेण्ट प्रोजेक्ट हो गया। इस योजना के अन्तर्गत उच्चतर कृषि प्रणालियों, सिंचाई की योजनाओं और सहकारी समितियों के प्रोत्साहन द्वारा आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। सामाजिक विकास के लिए व्यक्तियों को स्वास्थ्य–सम्बन्धी शिक्षा एवं सामाजिक शिक्षा की उच्चतर सुविधायें उपलबध करायी गईं। इस योजना ने ग्रामों की दशा में सराहनीय सुधार किया फिर भी सफलता उतनी न मिल सकी जितनी मिलनी चाहिये थी क्योंकि जनता का सहयोग पूर्ण रूप से प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की गई।

समाज कार्य का क्षेत्र–

हम देख चुके हैं कि समाज कार्य की मौलिक रूचि अभ्यन्तर–वैयक्तिक एवं अन्तर–वैयक्तिक समायोजन की ओर है। समाज कार्य उन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है, जो समाज की सामान्य संस्थाओं द्वारा पूरी नहीं हो पाती। यह आवश्यकताएं किसी भी क्षेत्र में हो

सकती हैं। सामान्य रूप से समाज कार्य की प्रणालियों का प्रयोग निम्नलिखित क्षेत्रों में किया जा सकता है–

1. शिशु कल्याण 2. युवक कल्याण 3. महिला कल्याण 4. वृद्धावस्था
5. परिवार कल्याण 6. श्रम कल्याण 7. ग्रामीण कल्याण 8. शोधन कार्य
9. पिछड़ी जाति एवं आदिम जाति कल्याण 10. चिकित्सा सम्बन्धी कल्याण
11. विद्यालय सम्बन्धी समाज कार्य।

1.2.3 समाज कार्य के उद्देश्य एवं महत्व (Objectives and Importance of Social Work)

समाजकार्य के उद्देश्य (Aims of Social work)

प्रत्येक व्यक्ति के अपने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक उद्देश्य होते हैं। समाज कार्य भी इसका अपवाद नहीं है। समाज कार्य का प्रयोग आम जनता की भलाई के लिए किया जाता है। इसके द्वारा सामाजिक समस्याओं का समाधान होता है और मानव कल्याण की वृद्धि होती है। इस दृष्टि से समाज कार्य का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति समूह तथा समुदाय को कल्याण के उच्चतम स्तर तक पहुँचने में सहायता करना है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समाज कार्य में जिस कार्य प्रणाली का उपयोग किया जाता है वह अन्य व्यवसायों जैसे–औषधि, कानून तथा अध्यापन आदि की कार्य प्रणाली से भिन्न है। समाज कार्य की पद्धति में उन सभी आर्थिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारकों पर विचार किया जाता है जो व्यक्ति समूह तथा समुदाय के जीवन को प्रभावित करते हैं। अन्य व्यवसायों की पद्धति में भी यद्यपि सेवार्थी की समस्याओं का निदान व उपचार का प्रयास किया जाता है, परन्तु इन व्यवसायों की पद्धति का सम्बन्ध आवश्यकताओं के एक विशेष पहलू तक ही सीमित है। इसके विपरीत समाज कार्य मनुष्य की मनोसामाजिक समस्याओं से सम्बद्व है जो मानव जीवन के किसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं हैं। इसके उद्देश्य व्यापक हैं।

हेमिल्टन ने समाज कार्य के उद्देश्यों को दोहरा बतलाया है। एक ओर शारीरिक व भौतिक कल्याण और दूसरी ओर सन्तोषजनक सम्बन्धों द्वारा सामाजिक अभिवृद्वि। उनके अनुसार समाज कार्य का उद्देश्य व्यक्ति, परिवार एवं समूहों को सामाजिक सम्बन्धों में सहायता करना ही नहीं है, अपितु स्वास्थ्य और आर्थिक स्तरों को बढ़ाकर सामान्य सामाजिक दशाओं का सृजन करना है।

अतः समाज कार्य के विविध उद्देश्यों को निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं–

(1) **सामान्य सामाजिक दशाओं में सुधार**–समाज कार्य के अन्तर्गत वैयक्तिक जैवकीय तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों को ध्यान में रखा जाता है। अतः समाज कार्य प्रणाली में उस आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को विशेष महत्व दिया जाता है, जिसके बीच लोग अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सामाजिक व्यवस्थापन की समस्याओं को हल करने के लिए कार्यक्रम तैयार करते समय समाजसेवी व्यक्ति के जीवन के किसी भी पहलू का बहिष्कार नहीं करता। जिस समुदाय में व्यक्ति जीवन व्यतीत करता है, उसकी स्थिति सदा व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती है। इस प्रकार समाज कार्य की पद्वति द्वैत है। इसका लक्ष्य व्यक्ति परिवार तथा समूह के व्यक्तियों को उनके सामाजिक सम्बन्धों में सहायता प्रदान करना मात्र नहीं है, बल्कि इसका प्रमुख लक्ष्य स्वास्थ्य, आर्थिक स्तर, कार्य की दशा, तथा आवास के स्तर में सुधार कर सामान्य सामाजिक दशाओं में सुधार करना है।

(2) **निर्धन तथा धनवान दोनों की सहायता**–समाज कार्य के प्रारम्भिक स्वरूपों दान के जैसे निर्धनों की सहायता तथा समाज में दयनीय स्थिति वाले निम्न वर्गों को ही महत्व दिया जाता था। अन्धे, लूले, बहरे, लंगड़े, विकलांग तथा बीमार व्यक्तियों को केवल जीवित रहने भर की सहायता दी जाती थी, उन्हें समाज में नये सिरे से स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता था। किन्तु वर्तमान समाज कार्य उत्तरोत्तर अपने वर्ग स्वरूप से मुक्ति पा रहा है। समुदाय के सभी वर्गों को इस क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किया गया है। आज सामाजिक सेवाओं द्वारा सभी वर्ग के व्यक्तियों को सहायता प्रदान की जाती है।

(3) **समाज के साधन व शक्तियों का उचित उपयोग**–समाज कार्य का लक्ष्य जहां समाज के सभी वर्ग तथा समुदाय के लोगों की सहायता करना है, वहीं दूसरी ओर इसका उद्देश्य समाज के साधन तथा शक्तियों का उपयेग करना है। इसके लिए समाज कार्य विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का उपयोग करता है। इनमें निम्न मुख्य हैं–

1. कल्याण संस्थान
2. स्कूल
3. अस्पताल
4. चर्च
5. न्यायालय इत्यादि।

यह संस्थायें समाज में सहायता के ऐसे माध्यमों का कार्य करती है, जिनसे व्यक्ति अपनी विविध आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने तथा अपनी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ

होता है। व्यक्ति की इन विविध आवश्यकताओं में से अनेक आवश्यकतायें वृद्धावस्था, बीमारी तथा शारीरिक स्थिति के कारण उत्पन्न होती हैं, जिनका समाधान करना व्यक्ति के साधनों से बाहर होता है।

(4) **व्यक्ति एवं समाज का कल्याण**–समाज कार्य में एक ओर समाज पर ध्यान केन्द्रित होता है, दूसरी ओर समाज को निर्मित करने वाली इकाई व्यक्ति के ऊपर। दूसरे शब्दों में समाज कार्य का उद्देश्य व्यक्ति का समाज के साथ कल्याण करता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज कार्य व्यक्ति को उसकी वास्तविक स्थितियों के साथ व्यवस्थापन करने के लिए प्रेरित करता है। यह सर्वप्रथम व्यक्ति की वास्तविकता ज्ञात करनें में मदद करता है। इसके बाद व्यक्ति को अपनी प्रस्तुत वास्तविक स्थिति में सुधार करने के लिए सहायता देता है। इसके साथ साथ समाज कार्य उन सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के विरूद्ध समस्त सामाजिक शक्तियों को क्रियाशील करता है, जो स्थितियां खराब स्वास्थ्य, मानसिक पीड़ा, निराशा तथा समाज विरोधी व्यवहार के लिए उत्तरदायी होती हैं। संघर्ष की स्थिति में समाज कार्य कठिनाइयों का सामना करने तथा उन्हें हल करने के लिए मदद देता है और लोगों को उनके लाभ के लिए सुलभ सामाजिक सेवाओं के बारे में ज्ञान प्रदान करता है।

(5) **व्यक्ति तथा परिवारों की आर्थिक सहायता में सहयोग**– इन उद्देश्यों के बीच समाज कार्य सामाजिक सुरक्षा के लाभों, पेंशन तथा सेवा संस्थाओं के सहयोग द्वारा व्यक्ति तथा परिवार को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने का भी कार्य करता है। यह सहायता बेरोजगारी के लिए समुदाय के साधनों के उपयोग, चिकित्सा की सुविधाएँ, मानसिक उपचार, सांस्कृतिक तथा शिक्षात्मक विकास, व्यावसायिक निर्देशन, प्रशिक्षण तथा मनोरंजन की सुविधाओं के रूप में की जाती है।

(6) **समस्या के मूल में निहित कारणों का उन्मूलन**– समाज कार्य इस आधारभूत मान्यता को ले कर आगे बढाता है कि प्रत्येक मानवीय समस्या के मूल में किसी न किसी प्रकार के कारण निहित हैं। अतः समाज कार्य में सेवार्थी की आवश्यकता के समय सहायता दी जाती है। साथ ही ऐसे कार्यक्रमों को सम्पन्न किया जाता है जिससे उन सभी सामाजिक दशाओं का उन्मूलन किया जाता है जो मानवीय पीड़ा तथा अव्यवस्थापन के लिए उत्तरदायी होती है। व्यक्ति तथा समूह के सामाजिक व्यवस्थापन के लिए उस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विचार किया जाता है जिसके साथ व्यक्ति या समूह सम्बन्धित होते हैं। यद्यपि ऐसे व्यक्तियों तथा समूहों के मूल्य समाजसेवी के निजी मूल्यों से भिन्न होते हैं। अतः समाजसेवी सदैव यह प्रयास करता है कि मूल्यों की भिन्नता से उसमें व्यक्तियों तथा समूहों के प्रति

किसी प्रकार के पक्षपात के पूर्वाग्रह का विकास न हो। वह व्यक्ति तथा समुदाय को अपनी संन्तोषपूर्ण उपलब्धि के लिए सहायता प्रदान करता है।

(7) **लोकतन्त्रीय और मानवीय अधिकारों की प्राप्ति का प्रयास**– उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त समाज कार्य के अन्तर्गत अनुचित कार्य तथा व्यवहार का किसी प्रकार से समर्थन नहीं किया जाता। यह सदैव व्यक्ति तथा समुदाय को संन्तोषपूर्ण जीवन को प्राप्त करने में मदद करता है। यह व्यक्ति तथा समूह की आर्थिक तथा संवेगात्मक समस्याओं का ही समाधान नहीं करता बल्कि उन्हें स्वनिश्चित लक्ष्य को प्राप्ति करने में भी मदद करता है। इस प्रकार समाज कार्य मनुष्य की प्रतिष्ठा, अधिकार, उन्नत जीवन, सुरक्षा, स्नेह तथा मान्यता को प्राप्त करने में मदद करता है। बाल्टर ये0 फ्रिडलेंडर के शब्दों में,'' समाज कार्य लोकतांत्रिक आदर्शों और मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने और सभी नागरिकों के लिए सुन्दर जीवन स्तर व सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने और स्नेह स्वीकरण मान्यता तथा स्तर सम्बन्धी सार्वभौमिक मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करता है।''

समाज कार्य का महत्व :

समाज कार्य के महत्व का मुख्य सम्बन्ध समस्या के समाधान से है। अतः समस्याओं को हल करने व समाज की कार्यशीलता में वृद्धि करने के लिए समाजकार्य का विकास हुआ। समाज की अधिकांश समस्याएं शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पर्याप्त पूर्ति न होने के कारण उत्पन्न होती है। अतः सेवार्थी की मूलभूत आवश्यकताओं का अन्दाज लगाकर, उसे अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने में सहायता प्रदान करना, समाज कार्य का मुख्य लक्ष्य है।

इस सम्बन्ध में आवश्यकता का आशय उन अभावों से है जिन्हें पर्याप्त जीवन स्तर को प्राप्त करने के दृष्टिकोण से दूर करना आवश्यक है। इन प्राथमिक आवश्यकताओं में सर्वप्रथम स्थान जीवित रहने तथा जीवन को सुरक्षित रखने की आवश्यकता का है, किन्तु मनुष्य के लिए जीवित रहना ही पर्याप्त नहीं है। अतः उसकी द्वितीयक आवश्यकताओं के ऊपर भी विचार किया जाता है। इसलिए समाज कार्य में आर्थिक, भावात्मक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों को भी महत्व दिया जाता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति अनेक व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। अतः समाज कार्य के अभिकरण मुख्य रूप से उन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं जिनके लिए परिवार तथा राज्य द्वारा किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं की गयी है। इस प्रकार किसी भी समाजकार्य की भूमिका का निर्धारण उस समय की प्रकट आवश्यकताओं द्वारा होता है।

वर्तमान समाज में सामाजिक कार्य की भूमिका व्यक्ति तथा समुदाय की सम्पन्नता को आश्वस्त करने तक सीमित नहीं है। इसका कार्य दो प्रमुख लक्ष्यों से सम्बन्धित है– सर्वप्रथम समाजकार्य उन स्थितियों को उत्पन्न करने का प्रयास करता है जो व्यक्तियों को सन्तुष्ट जीवन प्राप्त करने में सहायक होती है। द्वितीय यह व्यक्ति तथा समुदाय के अन्तर्गत उन क्षमताओं को उत्पन्न करने का प्रयास करता है जिससे पर्याप्त तथा सृजनात्मक जीवन संभव होता है। इस सम्बन्ध में आर्थर ई0 फिन्क आदि लेखकों का निम्न कथन उल्लेखनीय है–

"वर्तमान में इस व्यवसाय की भूमिका को देखते हुए हमें स्पष्ट रूप से यह समझना चाहिये कि इसका कार्य प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय की प्रसन्नता को आश्वस्त करना नहीं है, बल्कि इसका कार्य दो लक्ष्यों को पूरा करना है। सर्वप्रथम उन परिस्थितियों को उत्पन्न करना जो जीवन को यथा संभव सन्तुष्ट बनाने में मदद करे। द्वितीय व्यक्तियों एवं समुदाय के अन्दर उन क्षमताओं का विकास करना जिससे वे अधिक अच्छी तरह जीवन व्यतीत कर सके।"


Child welfare


Youth welfare


Family welfare


Labour welfare


school social work


Oldage welfare


Triba welfare


Medical welfare


Rural Welfare

1.2.4 समाज–कार्य के सिद्धान्त (Principle of Social Work)

आत्मनिर्णय का सिद्धान्त :- समाज–कार्य का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि सेवार्थी को अपनी समस्याओं से जूझने के तरीके और सामाजिक कार्यकर्त्ता, अभिकरण तथा साधनों के चुनाव के सम्बन्ध में आत्मनिर्णय का पूरा–पूरा अधिकार होता है। चूँकि समाज–कार्य का तरीका एक जनतांत्रिक तरीका है, इसलिए इस आत्मनिर्णय की सुविधा से सेवार्थी को वंचित नहीं किया जा सकता। आत्मनिर्णय की परिसीमाएं सामाजिक कार्यकर्त्ता की आवश्यक तथा उपयोगी निर्देशक होती

हैं। सामाजिक कार्यकर्त्ता किसी भी स्थिति में दृढ़ निर्णायक की तरह नहीं काम करता वरन् उसकी दृष्टि और उसका तरीका वस्तुपरक हुआ करता है।

सेवार्थी की मनोदशा के अनुसार कार्य करना :- सेवार्थी की भावना के साथ–साथ सोचना और समझना किन्तु उसकी ही भावनाओं के प्रवाह में न बह जाना, समाज–कार्य का एक अन्य सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह होता है कि सामाजिक कार्यकर्त्ता सेवार्थी की मनोदशा से कदम मिला कर तो चलता है किन्तु अपनी भी मनोदशा वैसी ही नहीं बना लेता जैसा कि सेवार्थी की होती है। सेवार्थी समस्याग्रस्त होता है और सामाजिक कार्यकर्त्ता उस समस्या से उसको मुक्ति दिलाने में सहायक। यदि वह भी सेवार्थी की ही तरह हीन दशा से ग्रस्त हो जायेगा तो वह उसकी मदद कर ही क्या सकता है।

तथ्यों को उनके मूलरूप में ही स्वीकार करना :- सेवार्थी की सहायता के दौरान अनेक प्रकार के तथ्यों को उनके मूलरूप में ही स्वीकार किया जाता है। ऐसा नहीं कि उनको नकारा जाय। सहायता के दौरान सेवार्थी के कल्याण को तरजीह दी जाती है, न कि अभिकरण अथवा सामाजिक कार्यकर्त्ता को। सामाजिक कार्यकर्त्ता और अभिकरण के ध्येय और पद्धतियों में सेवार्थी की आवश्यकता के अनुरूप थोड़ा–बहुत परिवर्तन–परिवर्द्धन कर लिया जाता है। सिद्धान्ततः यह बात मानी जाती है कि सहायता की पद्धति, उसके साधन तथा साक्षात्कार इत्यादि का स्वरूप सरल और सुग्राह्य होना चाहिए। इनकी दुरूहता या जटिलता सहायता की उद्देश्यपूर्ति में बाधक हुआ करती है। ऐसा भी माना जाता है कि किसी अभिकरण और सेवार्थी की सहायता के दौरान जो भी व्यक्ति अथवा संस्थाएँ परिपूरक रूप में सहायतार्थ प्रस्तुत हों उनका उपयोग किया जाना चाहिए। यद्यपि व्यापक या मूल अर्थों में सभी सेवार्थियों की इकाइयाँ अपने–अपने में एक–सी दीखती हैं किन्तु इनमें कुछ–न–कुछ अंतर अवश्य होता है। सहायता का कार्य इनके इस अन्तर को ध्यान रखते हुए करना चाहिए।

गोपनीयता का सिद्धान्त :- अभिकरण, समुदाय या सेवार्थी से संबंधित दूसरों से या स्वयं ही उनसे जो कुछ भी तथ्य प्राप्त हों उन्हें उनकी इच्छा या भावना के अनुसार गोपनीय या अगोपनीय रखा जाना चाहिए। इन तथ्यों का सहायता–प्रक्रिया में इस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए कि जिन बातों को सेवार्थी या अन्य चाहते हों कि वे गुप्त रहें वे गोपनीय ही रखी जायें या अन्य लोगों को मालूम न होने दी जायँ। इससे एक तो आपसी विश्वास बढ़ता है दूसरे और अधिकाधिक गुप्त तथ्य सामने आते हैं।

उद्देश्यपूर्ण व्यवहार का सिद्धान्त :- समाज–कार्य का एक बहुत ही बुनियादी सिद्धान्त यह है कि सेवार्थी या अन्य किसी के व्यवहार के पीछे कुछ–न–कुछ उद्देश्य अवश्य ही निहित होता है। यह उद्देश्य उपयोगी और हानिकारक दोनों हो सकता है। व्यवहारगत उद्देश्य व्यक्तिपरक या समाजपरक कुछ भी हो सकता है। कोई भी व्यक्ति, समूह या समुदाय जो कुछ भी व्यवहार करता है उसके पीछे अनेक प्रेरक कारण हुआ करते हैं। अनेक कारण के दो अर्थ हैं। एक अर्थ तो यह है कि किसी एक व्यवहार का प्रेरक कोई एक ही निश्चित कारण नहीं होता तथा हर व्यवहार कई कारणों के संयोग से प्रतिफलित होता है। व्यवहार और उसके कारण के विश्लेषण के समय इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

समाज–कार्य के व्यवहार के दौरान प्रायः एक साथ अनेक प्रक्रियाएँ अन्तःक्रिया करती रहती हैं। प्रक्रियाओं की इन अन्तःक्रिया को ध्यान में रखना चाहिए और उनको ऐसे नियोजित और निर्देशित करते रहना चाहिए कि उनका सेवार्थी के हित में और समाज–कार्य के ध्येय की पूर्ति में अधिक–से–अधिक लाभप्रद उपयोग किया जा सके। यह हमेशा याद रखना चाहिए कि समाज–कार्य के माध्यम से दी जाने वाली सहायता अपने में कोई अन्त नहीं है वरन् यह एक साधन है। इस सहायता के जरिये सेवार्थी और समाज एक दूसरे के अधिकाधिक परिपूरक बनते हैं। मानव की स्थिति में सुधार सम्भव हैं और परिवर्तन एक आवश्यक अनिवार्यता है।








हमने जाना

- मानव सभ्यता के आरम्भ से ही समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ जन्म लेती हैं और प्रत्येक समाज में इन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता रहा है।
- मनोसामाजिक समस्याओं के समाधान और निदान का जो वैज्ञानिक तरीका है, उसे हम समाज कार्य कहते हैं।
- समाज कार्य मानव सम्बन्धों के वैज्ञानिक ज्ञान तथा कुशलता पर आधारित एक व्यावहारिक सेवा है। यह विज्ञान तथा कला दोनों है।
- जिस प्रकार एक शारीरिक रोग चिकित्सक का अपने रोगी के प्रति उत्तरदायित्व होता है उसी प्रकार एक समाज कार्यकर्त्ता का भी अपने सेवार्थी के प्रति उत्तरदायित्व है।

- समाज कार्य इस आधारभूत मान्यता को ले कर आगे बढाता है कि प्रत्येक मानवीय समस्या के मूल में किसी न किसी प्रकार के कारण निहित है।
- समाज कार्य के सिद्धान्त सेवार्थी के साथ उसकी समस्या समाधान मे वैज्ञानिक तरीके से सहायता प्रदान करते हैं तथा उसे समझने में सहायता करते हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ

समाज कार्य — मनोसमाजिक समस्याओं के समाधान और निदान का जो वैज्ञानिक तरीका है, उसे हम समाज कार्य कहते हैं।

समाज कल्याण — समाज कल्याण के अन्तर्गत वे संगठित क्रियाएं आती हैं जो संरक्षण, सुरक्षा तथा मानवीय साधनों की प्रगति से सम्बन्धित हैं।

श्रमदान — श्रमदान में व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों के हित के लिए निष्काम भावना से श्रम का समर्पण करता है परन्तु श्रमदान को समाज कार्य कहना उचित नहीं है।

अभ्यन्तर वैयक्तिक समायोजन — अभ्यन्तर वैयक्तिक समायोजन का अर्थ है किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाहित मनोवृत्तियों और मूल्यों का एकीकरण एवं संन्तुलन। इसका सम्बन्धं मनुष्य की अहं शक्ति से है और मनोवृत्ति–सम्बन्धी एकीकरण एवं सन्तुलन के लिए अहं का शक्तिशाली होना आवश्यक है।

अन्तर वैयक्तिक समायोजन — अन्तर वैयक्तिक समायोजन का सम्बन्ध एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के बीच के सम्बन्धों के मध्य समायोजन से है। इसका सम्बन्ध व्यक्तियों के सामाजिक भूमिका सम्बन्धी सम्पादन और उनकी स्थितियों से सम्बन्धित भूमिका सम्बन्धी आकांक्षाओं से है ।

अभ्यास के प्रश्न

1. परम्परागत समाज कार्य के पाँच उदाहरण लिखिए जो आपके आसपास के वातावरण से हों ।
2. अपने अध्ययन क्षेत्र में समाज कार्य के क्षेत्रों की सूची बनाइये।

3. अपने अध्ययन क्षेत्र में विद्यमान दरिद्रता, निराश्रिता, निर्धनता, रोग, बेरोजगारी और अन्य समस्याओं की सूची बनायें ।
4. उपरोक्त में से कौन–कौन सी समस्याएं ऐसी हैं जिनका समाधान आप स्थानीय स्तर पर कर सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

1. समाज कार्य परिचय – प्रो0 राजाराम शास्त्री।
2. समाज कार्य का इतिहास एवं दर्शन– प्रो0 मिर्जा रफुद्दीन अहमद।
3. श्रम एवं समाज–कल्याण– पी0आर0 एन0 सिन्हा एवं इन्द्रबाला।
4. समाज कार्य, इतिहास दर्शन प्रणालियां – डॉ. सुरेन्द्र सिंह एवं डॉ. पी.डी. मिश्रा।
5. समाज कार्य – डॉ. ए. एन. सिंह एवं डॉ. ए.पी. सिंह।

1.3 समाजकार्य की पद्धतियाँ एवं मूल्य (Values and Methods of Social Work)

उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि –

- समाज कार्य के आधारभूत मूल्य एवं दर्शन क्या हैं?
- समाज कार्य की प्राथमिक पद्धतियाँ क्या हैं?
- समाज कार्य की द्वितीयक पद्धतियाँ क्या हैं?
- सामुदायिक सेवाकर्ता या नेतृत्वकर्ता की क्या भूमिका है?

1.3.1 समाजकार्य का व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक परिचय (Professional and Scientific Introduction of Social Work)

समाज कार्य का उद्‌भव सेवा कार्य से हुआ है। जिसमें किसी पीड़ित अथवा समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति की सहायता धार्मिक अथवा मानवीय भावना से प्रेरित होकर की जाती थी। प्रारम्भिक काल में समाज कार्य की गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को निर्धनों की सहायता, दान–पुण्य, परोपकार या समाज सुधार आदि की संज्ञा दी जाती थी। इसी प्रकार मध्यकालीन युग में समाज कार्य मानवता के आधार पर किया जाता रहा। धीरे–धीरे धर्म, दान–दया और मानवता के आधार पर निर्धनों, रोगियों, निराश्रितों, अपंगों आदि की सेवा व्यक्तिगत भावना से प्रेरित होकर करने की धारणा में परिवर्तन आया। वर्तमान समय में समाज कार्य एक व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया बन गया है। निम्नांकित आधार स्पष्ट करते हैं कि समाज कार्य का वर्तमान स्वरूप व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक विशेषताओं से युक्त है–

1. वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध ज्ञान ।
2. विशिष्ट प्रणालियाँ, विधियाँ व प्रविधियाँ।
3. शैक्षिक एवं प्रशिक्षण पद्धतियाँ।
4. व्यावसायिक संगठन एवं समितियाँ।
5. सामुदायिक मान्यता एवं सामाजिक अनुमोदन।
6. आचार–संहिता।

1. वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध ज्ञान :

आधुनिक समाज कार्य एक क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित ज्ञान है। समाज कार्य के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली समस्त सेवाएं और सहायता वैज्ञानिक होती हैं।

2. विशिष्ट प्रणालियाँ तथा विधियाँ व प्रविधियाँ :

समाज कार्य के उद्देश्यों से स्पष्ट हो जाता है कि समाज कार्य मानव कल्याण व हित से सम्बद्ध है। समाज कार्य ही नहीं वरन् कई व्यवसाय मानवीय कल्याण व विकास में रूचि रखते हैं परन्तु समाज कार्य की अपनी विशिष्ट प्रणालियाँ, विधियाँ व प्रविधियाँ होती हैं। जिनका प्रयोग सामाजिक कार्यकर्ता अपने कार्यक्षेत्र में करता है।

3. शिक्षण एवं प्रशिक्षण पद्धतियाँ :

समाज द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवसायों के लिए कुछ विशिष्ट शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है। इन क्षेत्रों के प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकताओं को ही व्यावसायिक कार्यकर्ता का स्तर प्रदान किया जाता है। यह शिक्षा समाज कार्य के विद्वान एवं अनुभवी अभ्यासकर्ताओं एवं अध्यापकों द्वारा दी जाती है। वर्तमान में समाज कार्य की शिक्षा वैज्ञानिक स्वरूप में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के द्वारा प्रदान की जाती है।

4. व्यावसायिक संगठन एवं समितियाँ :

किसी भी व्यवसाय के सदस्यों को संगठित होने की आवश्यकता होती है। कोई भी जीविका व्यावसायिक स्तर पर तभी प्राप्त की जा सकती है जब उसका कोई व्यावसायिक संघ, समिति अथवा सोसाइटी गठित हो। संगठन द्वारा सेवा के स्तर या मानदण्ड निर्धारित किये जायें। साथ ही कार्यकर्ता एक निश्चित आचार–संहिता का पालन करें जिससे व्यवसाय को स्थिरता प्राप्त हो सके।

5. सामुदायिक मान्यता एवं सामाजिक अनुमोदन :

किसी भी व्यवसाय की यह विशेषता या गुण माना गया है कि उसे सामुदायिक मान्यता तथा समाज द्वारा अनुमोदन व स्वीकृति प्राप्त होना चाहिए। साथ ही यह भी विचारणीय है कि मान्यता व अनुमोदन इस आधार पर दिया गया हो कि वह व्यवसाय समाज के लिए उपयोगी तथा हितकर हो। किसी जीविका को समाज के लिए उपयोगी व हितकारी होने के रूप में मान्यता व अनुमोदन प्रदान किया गया है तो उसे हम व्यवसाय का स्तर देते हैं। समाज कार्य को व्यावसायिक स्तर की मान्यता प्राप्त है। अतः हम कह सकते हैं कि चूंकि समाज कार्य में व्यवसाय की विशेषता निहित है इसलिए इसे एक व्यवसाय की संज्ञा दी जाती सकती है। समाज कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षित तथा योग्य सामाजिक कार्यकताओं की नियुक्तियाँ हो रही है।

6. आचार–संहिता :

प्रत्येक व्यवसाय के कुछ विशिष्ट नियम, प्रतिबन्ध, आदर्श एवं व्यवहार करने की निश्चित सीमा व परिधि होती है। जिसे आचार–संहिता कहते हैं। जिसके आधार पर प्रत्येक व्यावसायिक कार्यकर्ता निश्चित आदर्शों से नियन्त्रित होकर व्यावसायिक व्यवहार करता है। आचार–संहिता के द्वारा कार्यकर्ताओं के व्यवहार एवं कार्यों में समानता स्थापित होती है। यह मनमाने ढंग से व्यावसायिक क्रियाकलापों को करने को नियन्त्रित करता है।

स्वैच्छिक समाजकार्य तथा व्यावसायिक समाजकार्य की तुलना

हम जान चुके हैं कि समाज कार्य प्रारम्भ में एक स्वैच्छिक सेवा कार्य के रूप में था। बाद में समाज वैज्ञानिकों ने इसे क्रमबद्ध, व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। अवधारणा की स्पष्टता न होने के कारण आज भी स्वैच्छिक और व्यावसायिक समाज कार्य में विभेद करना कठिन होता है। हम यहां दोनों की समानताओं और असमानताओं को आपकी जानकारी के लिए अलग–अलग स्पष्ट कर रहे हैं।

स्वैच्छिक एवं व्यावसायिक अथवा वैज्ञानिक समाजकार्य की तुलना करने पर हम पाते हैं कि इनके मध्य निम्नलिखित समानतायें एवं विभिन्नतायें है :–

समानता :

समाज सेवा / समाज कल्याण स्वैच्छिक समाज कार्य	**स्माज कार्य / व्यावसायिक समाज कल्याण**
• यह दुःखी, पीड़ित एवं निर्धन तथा असहाय व्यक्तियों की सहायता करता है।	• यह भी निर्धन, निराश्रित अथवा असहाय व्यक्तियों की सहायता करता है।
• सहायता का कार्य धार्मिक–संगठनों अथवा सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से अथवा स्वयं किसी व्यक्ति द्वारा किया जाता है।	• इसके अन्तर्गत भी सामाजिक अभिकरणों के माध्यम से ही सहायता कार्य किया जाता है।
• सहायता देने का मुख्य उद्देश्य मानव कल्याण होता है।	• इसमें भी सहायता देने का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति का कल्याण करना ही होता है।

असमानतायें :

• परम्परागत समाजकार्य धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर पापों से छुटकारा तथा पुण्य एवं मोक्ष प्राप्त करने के लिए सम्पन्न किया जाता है।	• व्यावसायिक समाजकार्य को कार्यकर्ता पेशा के रूप में सम्पन्न करता है, जिस प्रकार अन्य पेशों (जैसे–चिकित्सा, वकालत) के व्यक्ति अपना कार्य करते हैं उसी प्रकार व्यावसायिक समाजकार्यकर्ता भी अपना कार्य सम्पन्न करता है।
• परम्परागत अथवा स्वैच्छिक समाजकार्य के अंतर्गत कोई निश्चित मूल्य नहीं होते हैं। कार्यकर्ता अपनी इच्छा एवं सुविधानुसार लोगों की सहायता करता है।	• व्यावसायिक अथवा वृत्तिक समाजकार्य के कुछ निश्चित मूल्य एवं मान्यतायें होती हैं, इन्हीं को आधार मानकर सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्तियों की सहायता करता है।
• इसमें सामाजिक कार्यकर्ता को किसी आचार संहिता के पालन की आवश्यकता नहीं होती है। यदि यह कहा जाय कि परम्परागत समाजकार्य की कोई आचार संहिता नहीं है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।	• व्यावसायिक समाजकार्य की आचार संहिता है। इन्ही आचार संहिताओं का पालन सामाजिक कार्यकर्ता को करना पड़ता है।
• परम्परागत समाजकार्य सम्पन्न करने हेतु कार्यकर्ता को किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।	• व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता के लिए गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। वह तभी सामाजिक कार्यकर्ता बन सकता है, जब प्रशिक्षण कार्य पूरा कर लेता है।
• परम्परागत समाजकार्य में कोई सिद्धान्त अथवा प्रविधि नहीं होती। कार्यकर्ता तत्कालीन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए मानवीय भावनाओं के आधार पर सहायता कार्य सम्पन्न करता है।	• व्यावसायिक समाजकार्य के कुछ नियत सिद्धान्त एवं प्रविधियाँ हैं, इनके अनुसार ही कार्यकर्ता व्यक्ति, समूह तथा समुदाय की सहायता करता है।
• स्वैच्छिक अथवा परम्परागत समाजकार्य के लिए सामाजिक अभिकरणों की आवश्यकता नहीं होती है।	• व्यावसायिक समाजकार्य सामाजिक अभिकरणों के माध्यम से ही सम्पन्न किया जाता है।

परम्परागत समाजकार्य के अंतर्गत कोई वृत्ति नहीं मिलती और न ही वह वृत्ति प्राप्त करने की इच्छा होती है।	व्यावसायिक समाजकार्यकर्ता को सेवा प्रदान करने के लिए एक निश्चित वृत्ति मिलती है।
• परम्परागत समाजकार्य में व्यक्ति को तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक अथवा तत्सम्बन्धी सहायता प्रदान करके ही सेवाओं की इतिश्री मान ली जाती है।	• व्यावसायिक समाजकार्य के अंतर्गत व्यक्ति, समूह तथा समुदाय की समस्याओं का निवारण होने तक सहायता प्रदान की जाती है।
• स्वैच्छिक समाजकार्य के अंतर्गत कार्यकर्ता स्वयं सेवार्थी के पास जाकर सहायता देने का कार्य करता है।	• व्यावसायिक समाजकार्य के अंतर्गत समस्याग्रस्त सेवार्थी कार्यकर्ता के पास स्वयं जाता है और सहायता की याचना करता है।
• परम्परागत समाजकार्य के अंतर्गत कार्यकर्ता मात्र आंशिक आर्थिक सहायता अथवा तात्कालिक आवश्यकता की वस्तुओं को प्रदान करके ही अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाता है।इस प्रकार इस विधि में सेवार्थी हमेशा दूसरे के ऊपर आश्रित रहता है।	• व्यावसायिक समाजकार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता इस आशय के साथ करता है कि वह आत्मनिर्भर बन सके तथा भविष्य में वैसी समस्याओं का समाधान स्वयं करने मे सक्षम हो जाय।

1.3.2 समाज कार्य का दर्शन एवं मूल्य (Philosophy and values of Social Work)

वैज्ञानिक समाजकार्य के दार्शनिक आधार

वैज्ञानिक अथवा व्यावसायिक समाज कार्य, समाज सेवा के उन मूलभूत सिद्धान्तों या मूल्यों पर आधारित है जिसमें समाज के असहाय, कमजोर व पीड़ित व्यक्ति की सहायता करना अन्य व्यक्तियों का उत्तरदायित्व माना जाता है। इसके लिए प्रमुख प्रेरक दार्शनिक आधारों की विवेचना निम्नांकित रूप में की जा सकती है–

मानवतावाद

आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार सभी मनुष्य उसी शक्ति (ईश्वर) की संतान हैं। सभी में एक आत्मा है। इस आधार को लेकर ईश्वरवादी मानवतावाद का जन्म हुआ। सभी मनुष्य समान हैं। सभी को सुख की कामना है। यह विचार प्रारम्भ में समाज कल्याण और फिर समाज कार्य की पृष्ठभूमि बन गया। धीरे–धीरे सामाजिक चिंतन धर्म निरपेक्ष होने लगा। मानव के अधिकार पर जोर दिया

जाने लगा। यूरोप के पुनर्जागरण के दार्शनिकों ने दो मानवतावादी सिद्वांत प्रतिपादित किये पहला व्यष्टि से ही समष्टि का निर्माण हुआ है और दूसरा मानवता का मूल मानव है। अतः मानवों की समानता और कल्याण की सम्भावनाएं विस्तृत हुई। यह सिद्धान्त समाजकल्याण और समाज कार्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि का आधार बन गया।

मानव की स्वतन्त्रता

समाज कल्याण के मार्ग में एक अन्य अवरोध यह था कि व्यक्ति के दुःख, विपत्ति और हीनता को उसके पूर्वजन्म का फल मान लिया गया। यदि व्यक्ति अपने भाग्य से बंधा हुआ है तो समाज उसका कल्याण कैसे कर सकता है? यदि व्यक्ति ईश्वरीय विधान से पूर्वजन्म का फल भोग रहा है, तो समाज उसको सुख देने में असमर्थ है। सामाजिक ज्ञान और चेतना के विकास के साथ–साथ ये धारणायें भी गलत मानी गयीं। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करता है, मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। इस सिद्धान्त में समाज कार्य के द्वारा समस्याग्रस्त लोगों के कल्याण के लिये आधार बना।

विवेकपूर्ण व्यवहार

एक पक्ष यह मानता है कि महापुरुषों या धर्म–ग्रन्थों के कथनों पर श्रद्धा रखते हुए उनका पालन करना चाहिये। इसके विपरीत दूसरा पक्ष किसी भी कार्य के पूर्व तर्क की कसौटी पर उसकी उपयुक्तता के विचार पर बल देता है। समाज कार्य में विवेकपूर्ण व्यवहार के सिद्धान्त को अपनाया गया है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विकास के क्रम में विज्ञान ने सामाजिक संगठन और लोगों के विश्वासों का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया है। आधुनिक विज्ञान मानवता, समानता, भ्रातृत्व और उदारतावाद की एक पूरी दार्शनिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करता रहा है। आधुनिक विज्ञान दार्शनिक भौतिकवाद और वैज्ञानिक और विवेकवादी मानवताव्राद को पुष्ट करता है और ये विचार ही समाज कल्याण और समाज कार्य की नींव में हैं–

समाज कल्याण और समाज कार्य्र के दार्शनिक आधार को संक्षेप में पांच धाराओं में रखा जा सकता है।

1. दार्शनिक भौतिकवाद पर आधारित मानवतावाद।
2. व्यक्ति और उसके विवेक पर विश्वास।

3. व्यक्ति को विशिष्ट मानकर उसकी विशिष्टता, स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व के सम्मान और सुरक्षा की व्यवस्था।

4. व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं– सामाजिक, मानसिक, आर्थिक की समान एकीकृत स्वरुप को स्वीकार करना।

5. व्यक्ति के कल्याण और समायोजन का सामाजिक उत्तरदायित्व।

समाज कार्य के मौलिक मूल्य

समाज कार्य के मौलिक मूल्यों की चर्चा करने से पूर्व यह जानना जरूरी है कि समाज कार्य के सम्बन्ध में मौलिक मूल्यों से क्या आशय है?

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री **डौरोथी ली** ने मूल्यों की परिभाषा करते हुए कहा है कि मानवीय मूल्यों के किसी एक मूल्य या मूल्यों की एक पद्धति से मेरा अभिप्राय है, वह आधार जिसपर एक व्यक्ति किसी एक मार्ग को किसी दूसरे मार्ग की अपेक्षा अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित समझते हुए ग्रहण करता है। हम मानवीय मूल्यों के विषय में केवल व्यवहार द्वारा ही जान सकते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुष्य के मूल्य उसके व्यवहार के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मूल्य सामाजिक नियन्त्रण का एक साधन है, जो व्यक्ति, समूह और समुदाय के व्यवहार पर नियन्त्रण रखते हैं।

प्रत्येक व्यवसाय के कुछ उद्देश्य होते हैं और प्रत्येक व्यवसाय में व्यावसायिक सदस्यों को अपने सेवार्थियों से व्यवहार करना होता है। अतः प्रत्येक व्यवसाय के कुछ मूल्य होते हैं जो उसके सदस्यों के व्यवहार पर नियन्त्रण रखते हैं और व्यावसायिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करते हैं। समाज कार्य भी एक व्यवसाय है और इसके भी कुछ विशेष मूल्य हैं। यह कहना अनुचित नहीं है कि समाज कार्य के मूल्यों के विषय में समाज कार्यकर्ताओं में अभी तक एकमत नहीं स्थापित हो सका है। परन्तु अधिकतर मूल्य ऐसे हैं जिनसे सभी सहमत हैं। सुप्रसिद्ध सामाजिक विचारक रॉस ने 10 मूल्यों को समाज कार्य के प्राथमिक मूल्य बताया है। वे इस प्रकार हैं–

1. मनुष्य का मूल्यवान होना और उसकी प्रतिष्ठा।
2. मानवीय प्रकृति की सम्पूर्ण विकास प्राप्त करने की योग्यता।
3. विभिन्नताओं की स्वीकृति।
4. मौलिक मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि।
5. स्वतन्त्रता।

6. आत्मनिर्देशन।

7. अनिर्णायात्मक प्रवृत्ति।

8. रचनात्मक सामाजिक सहयोग।

9. कार्य का महत्व एवं अवकाश का रचनात्मक प्रयोग।

10. अपने अस्तित्व को मनुष्य या प्रकृति से पहुंचने वाली हानि से सुरक्षा।

रॉस का मत है कि सभी समाज कार्यकर्ता उपरोक्त मूल्यों से सहमत हैं चाहे वे किसी भी धर्म, आर्थिक स्तर, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध हो या विभिन्न अनुभव रखते हों और विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तों में विश्वास रखते हों।

सामाजिक कार्यकर्ता इसका प्रयोग उपचार और शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रकार से कर सकता है।

मूल्यों के विकास में सेवार्थी की इस प्रकार सहायता करना कि वह अपने –

- मूल्यों को समझ सकें।
- परस्पर विरोधी मूल्यों के संघर्ष को समाप्त कर सके ।
- समाज के अन्य व्यक्तियों या समूह के मूल्यों के संघर्ष और अन्तर को समझ सके।
- वह अपने और दूसरों के मूल्यों के संघर्ष के विनाशकारी परिणामों को दूर कर सके।
- अधिक रचनात्मक सामाजिक तथा वैयक्तिक मूल्यों का पता लगाये और उन्हें ग्रहण करे।
- अपने मूल्यों के अनुसार व्यवहार कर सके और अपने मूल्यों के प्रयोग में लचीलापन उत्पन्न कर सके।
- विभिन्न प्रकार के मूल्यों में से उचित मूल्यों का चुनाव कर सके।

यहां पर इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सामाजिक कार्यकर्ता को यह अधिकार नहीं है कि वह वैयक्तिक मूल्यों को बलपूर्वक सेवार्थी के सर मढ़ दे। फिर भी यह अनिवार्य है कि कार्यकर्ता के वैयक्तिक और व्यवसायिक मूल्यों का तथा समुदाय के मूल्यों का कार्यकर्ता–सेवार्थी के सम्बन्धों में एक महत्वपूर्ण स्थान हो।

समाज कार्य मनुष्य की समायोजन या सांमजस्य–सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता है। इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य के व्यवहार को समझा और प्रभावित किया जाये।

व्यवहार को प्रभावित करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य के मूल्यों का ज्ञान प्राप्त किया जाय और यदि आवश्यकता हो तो उन्हें परिवर्तित करने में सेवार्थी की सहायता की जाय।

समाज कार्य का स्वरूप

समाज कार्य की कोई भी प्रणाली हो अर्थात् वैयक्तिक सेवा कार्य या सामूहिक सेवा कार्य, या सामुदायिक संगठन, प्रत्येक प्रणाली में मानवीय व्यवहार को समझने और उसे परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। उपरोक्त मूल्य व्यवहार को समझने और प्रभावित करने में सहायक होता है, क्योंकि बिना मनुष्य की मौलिक प्रकृति, विशेष अनुभव और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त किये हुए व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है।

1. **मनुष्य सदैव विवेकपूर्वक कार्य नहीं करताः** मानव एक मात्र ऐसा प्राणी है जो किसी भी कार्य को करते समय विवेक का उपयोग करता है, किन्तु कभी–कभी ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति विवेक का उपयोग न कर पाये। मनुष्य के व्यवहार को विवेकरहित बनाने में उसके पर्यावरण एवं परिस्थितियों का बड़ा महत्व है।

2. **मनुष्य में जन्म के समय न तो नैतिकता होती है और न सामाजिक प्रवृत्ति :** यह सब गुण समाज में रहकर उसके प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के व्यवहार को समझने और प्रभावित करने में इस मूल्य का भी बड़ा महत्व है। समाज कार्यकर्ता को जिस उदारता और सहनशीलता का दृष्टिकोण रखना चाहिये वह बिना इस मूल्य को स्वीकृत किये नहीं उत्पन्न हो सकती।

3. **आवश्यकताएँ वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की होती है :** समाज कार्यकर्ता का विश्वास है कि व्यक्तियों के लिए आवश्यक है कि उन्हें अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को सन्तोषजनक और समाज के लिए लाभदायक रूप से प्रकट करने का सुअवसर प्राप्त हो। समाज कार्य के अभ्यास में कार्यकर्ता को हर समय यह देखना पडता है कि सेवार्थी की आवश्यकताओं को किस प्रकार अधिक से अधिक पूरा किया जाये। साथ ही उसे यह भी देखना पड़ता है कि सेवार्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार हो जिससे समाज के सामान्य हितों को कोई हानि नहीं पहुंचे।

4. **मनुष्यों में महत्वपूर्ण अन्तर भी है और समानतायें भी इन अन्तरों और समानताओं को समाज की सहमति प्राप्त होनी चाहियेः** समाज कार्यकर्ता को विभिन्न प्रकार के सेवार्थियों से सम्पर्क स्थापित करना होता है। उसे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करनी पड़ती है। ऐसा करने में उसे पक्षपात से अपने को सुरंक्षित रखना पड़ता है

और सेवा प्रदान करते समय प्रत्येक धर्म, जाति और वर्ग के सेवार्थियों के साथ समानता का व्यवहार करना पड़ता है।

5. **मानवीय प्रेरणायें जटिल और प्रायः अस्पष्ट होती हैं** : समाज कार्यकर्ता को अधिकतर व्यवहार की समस्याओं का सामना पड़ता है। बहुधा सेवार्थी का व्यवहार किसी ऐसे प्रेरक से उत्पन्न होता है जो अस्पष्ट होता है तथा सेवार्थी स्वयं अपनी प्रेरणाओं का ज्ञान नहीं रखता। समाज कार्यकर्ता के लिए प्रेरणाओं की जटिलता का ज्ञान आवश्यक है। समाज कार्यकर्ता सेवार्थियों की प्रेरणाओं का पता लगाने और उन्हें इनका ज्ञान कराने का प्रयास करता है। व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए यह आवश्यक है।

6. **पारिवारिक सम्बन्धों का व्यक्तित्व के प्रारम्भिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है** : परिवार एक ऐसी इकाई है जिसमें व्यक्तियों के बीच परस्पर सम्बन्धी क्रिया पाई जाती है। व्यक्तित्व और चरित्र के निर्माण में परिवार प्रथम संस्था है। बहुधा सेवार्थी की वैयक्तिक समस्याओं का समाधान करने के लिए उसके पारिवारिक पर्यावरण के विषय में जानना आवश्यक होता है। परिवार में ही व्यक्ति की मनोवृत्तियों और प्रतिक्रिया–स्वरूपों का निर्माण होता है। शान्तिमय पारिवारिक जीवन व्यक्तित्व के संतुलित विकास के लिए अत्यावश्यक है।

7. **समाज कार्य का विश्वास है कि अयोग्य व्यक्तियों की भी वही आवश्यकताएं हैं जो योग्य व्यक्तियों की है** : समाज कार्य योग्यता और अयोग्यता के आधार पर मनुष्यों का वर्गीकरण और उनका गुण–दोष निर्धारण नहीं करता। समाज कार्य का विश्वास है कि असफल व्यक्ति मौलिक रूप से अपने सफल साथियों के समान है और उसे अपने पर्यावरण को वास्तविकता के प्रकाश में देखना और उसे अपने अनुकूल करने का प्रयास करना चाहिये।

8. **समाज कार्य योग्यता और अयोग्यता का आधार धन और शक्ति की अधिकता या कमी को नहीं बनाता** : समाजकार्य पूँजीवादी दृष्टिकोण का विरोधी है। वह मनुष्य की स्थिति उसके आर्थिक स्तर के आधार पर निर्धारित नहीं करता। वह व्यक्तित्व के मूल्यांकन में व्यक्ति के पर्यावरण का महत्व स्वीकार करता है और असफलता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व व्यक्ति पर ही नहीं रखता।

9. **समाजीकरण प्राप्त व्यक्तिवाद रूक्ष व्यक्तिवाद से उच्चतर है** : समाजकार्य व्यक्ति को एक ऐसे पृथक और आत्मनिर्भर अस्तित्व के रूप में नहीं देखता जो समाज से पृथक हो, बल्कि वह यह समझता है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह योग्यतानुसार

अपना सम्पूर्ण विकास कर सके—ऐसा विकास जो वैयक्तिक और सामाजिक रूप से पूर्ति के लिए एक नियोजित सामाजिक संगठन की आवश्यकता है। जिसका उद्देश्य यही हो और जो इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो।

10. **समुदाय के सदस्यों के कल्याण का उत्तरदायित्व समुदाय पर है :**

    यह सिद्धान्त दो मान्यताओं पर आधारित है :

    - समुदाय का कोई भी अंग यदि पीड़ित होगा तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण समुदाय पर पड़ेगा।
    - संभव है कि सामाजिक जीवन के अनेक असामंजस्यों के निवारण के लिए जिन साधनों की आावश्यकता होती है किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की शक्ति से बाहर हों।

    अतः सम्पूर्ण समाज की संगठित सुविधाओं का असामंजस्यों के निवारण और प्रतिबन्ध के लिए प्रयोग किया जाना चाहिये।

11. **समाज के समस्त वर्ग सामाजिक सेवाओं से लाभ उठाने का समान अधिकार रखते हैं :** समुदाय का उत्तरदायित्व है कि वह बिना पक्षपात के व्यक्तियों की सहायता करे चाहे वे व्यक्ति किसी भी वर्ग, जाति या राष्ट्रीयता के हों।

12. सामाजिक सहायता और सामाजिक बीमा के कार्यक्रमों का उत्तरदायित्व राज्य पर है।

13. **सार्वजनिक सहायता के कार्यक्रमों को अवश्यकता की अवधारणा पर आधारित होना चाहिए :** नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक अयोग्यताओं का प्रभाव सहायता की मात्रा पर नहीं पड़ना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अयोग्य है या कार्य करने की इच्छा नहीं रखता है तो भी उसे सहायता मिलनी चाहिए और साथ ही साथ इस बात का भी अन्वेषण होना चाहिए कि वे कौन से कारक हैं जो उस व्यक्ति को कार्य करने से रोकते है।

14. **श्रमिकों का संगठन सामुदायिक जीवन के लिए लाभदायक है :**

    श्रमिक वर्ग और समाज कार्य सहमत हैं कि सामाजिक वर्ग और जाति के आधार पर व्यक्तियों को विशेष अधिकार नहीं मिलने चाहिए। समाज कार्य और श्रमिक संगठन दोनों ही सामाजिक शोषण के विरोधी है।

15. **समस्त प्रजातियों और प्रजातीय समूहों में सम्पूर्ण समानता और परस्पर प्रतिष्ठा के आधार पर सम्पूर्ण सामाजिक सहयोग होना चाहिए :** यह मूल्य दो मान्यताओं पर आधारित है।

- समस्त प्रजातियों की संभावित योग्यताएं समान हैं और
- सांस्कृतिक भिन्नता बडी मूल्यवान वस्तु है। समाज कार्य के दर्शन का एक महत्वपूर्ण भाग है। सांस्कृतिक बहुलतावाद जिसका अर्थ है कि सांस्कृति भेदों का आदर किया जाये।

16. **स्वतन्त्रता और सुरक्षा को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता :**

यदि किसी व्यक्ति को बिना सुरक्षा के स्वतन्त्रता दी जाये तो वह ऐसा है कि उसे भूखा रहने, बेघर रहने, आश्रित रहने या रोगग्रस्त रहने की भी स्वतन्त्रता हो। इसी प्रकार बिना स्वतन्त्रता के सुरक्षा ऐसी ही है जैसे बन्दीगृह की सुरक्षा जहां व्यक्ति सुरक्षित है परन्तु स्वतन्त्र नहीं। समाज कार्य का विश्वास है कि स्वतन्त्रता और सुरक्षा को साथ–साथ चलना चाहिए। एक स्वतन्त्रता का दूसरी स्वतन्त्रता से और एक क्षेत्र की स्वतन्त्रता का दूसरे क्षेत्र की स्वतन्त्रताओं से सन्तुलन होना चाहिए।

17. **मनुष्य को सम्पूर्णतावादी दृष्टिकोण से देखने की अवधारणा :**

समाज कार्य मनुष्य का सर्वांगीण कल्याण और विकास चाहता है। वह प्रत्येक प्रकार की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता है। समाज कार्य व्यक्तित्व के किसी एक पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित नहीं करता बल्कि व्यक्तित्व को पूर्णरूप से विकसित करने का प्रयास करता है।

18. **समाज कार्य सामाजिक समस्याओं के कारणों की बहुलता के सिद्धान्त में विश्वास रखता है :** इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक समस्याओं का कोई एक कारण नहीं है। अतः समाज कार्य किसी एक सामाजिक विज्ञान पर बल नहीं देता। यह अनेक सामाजिक विज्ञानों का प्रयोग करता है। यही सिद्धान्त समाज कार्य की उदारता का मुख्य कारण है।

19. **समाज कार्य सामंजस्य को एक द्विमुखी प्रक्रिया समझता है जिसमें दोनो पक्षों की महत्वपूर्ण भूमिका है :**

फ्राइड लैण्डर का विचार है कि समाज कार्य के मौलिक मूल्यों का जन्म स्वतः नहीं हुआ है बल्कि उनकी जड़ें उन गहरे विश्वासों में मिलती हैं, जो सभ्यताओं को सींचते हैं। अमेरिका की प्रजातान्त्रिक सभ्यता का आधार नैतिक एवं अध्यात्मिक समानता, वैयक्तिक विकास की स्वतन्त्रता, सुअवसरों के स्वतन्त्र चुनाव, न्याय पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा, वैयक्तिक स्वतन्त्रता की एक निश्चित मात्रा, भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, पारस्परिक प्रतिष्ठा और सभी के अधिकारों की स्वीकृति पर है। उनका कहना है कि प्रजातन्त्र के यह आदर्श अभी तक पूर्णरुप से प्राप्त नहीं किये जा सके और समाज कार्य इन्ही आदर्शों की प्राप्ति का प्रयास कर रहा है।

वास्तव में समाज कार्य और प्रजातन्त्र में बहुत समानता है। प्रजातन्त्र के मौलिक आदर्श स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व हैं। यही समाज कार्य के भी मौलिक आदर्श हैं। सेवार्थी को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह अपने जीवन का मार्ग प्रदर्शन अपनी रुचि के अनुसार करे। उसे इस बात की भी स्वतन्त्रता होती है कि वह सहायता या सेवा स्वीकृति करे या न करे। सेवार्थी से समानता का व्यवहार किया जाता है चाहे वह किसी भी जाति या वर्ग का हो। उनकी मानवता का आदर करना समाज कार्यकर्ता का परम कर्तव्य है।

1.3.3 समाजकार्य की प्राथमिक पद्धतियाँ (Primary Methods of Social Work)

आप पूर्व में ही जान चुके हैं कि समाज कार्य एक योजनाबद्ध एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया है। समाज कार्य को करने के लिये कुछ सुस्पष्ट पद्धतियों का विकास लम्बे अनुभव के आधार पर किया गया है। इन पद्धतियों को इनकी प्रकृति विशिष्टता के आधार पर दो उपवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- समाज कार्य की प्राथमिक पद्धतियाँ।
- समाज कार्य की द्वितीयक पद्धतियाँ।

समाज कार्य की प्राथमिक पद्धतियों में वैयक्तिक सेवा कार्य, समूह सेवा कार्य एवं सामुदायिक सेवा कार्य पद्धतियाँ आती हैं। द्वितीयक पद्धतियों में समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक शोध एवं सामाजिक क्रिया पद्धतियों को सम्मिलित किया जाता है। आइये सामाजिक कार्य के व्यावहारिक स्वरूप को निर्धारित करने वाली इन सैद्धान्तिक पद्धतियों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करते हैं।

वैयक्तिक सेवा कार्य (Case Work)

वैयक्तिक सेवा कार्य में सेवार्थी के व्यक्तित्व के विकास के साथ ही उसकी समस्या को उसके ही सक्रिय सहयोग से सुलझाने पर भी बल दिया जाता है। इसे परिभाषित करते हुए **मेरी रिचमंड (1915)** ने कहा है कि "विभिन्न व्यक्तियों के लिए उनके साथ मिलकर उनके सहयोग से विभिन्न प्रकार के कार्य करने की एक कला है। इसका उद्देश्य एक ही साथ व्यक्तियों और समाज की उन्नति करना है।"

दूसरे शब्दों में स्पष्ट करें तो वैयक्तिक सेवा कार्य समायोजन रहित व्यक्ति की सामाजिक चिकित्सा है, जिसमें इस बात का प्रयास किया जाता है कि उसके व्यक्तित्व, व्यवहार एवं सामाजिक

सम्बन्धों को समझा जाए और उसकी सहायता की जाए जिससे कि वह एक उच्चतर सामाजिक स्थिति एवं वैयक्तिक समायोजन प्राप्त कर सके। वैयक्तिक सेवाकार्य असन्तुलित व्यक्तित्व को इस प्रकार सन्तुलित बनाने और उसका पुनर्निर्माण करने की एक कला है, जिससे व्यक्ति अपने पर्यावरण से समायोजन कर सके।

उपरोक्त परिभाषाओ से दो बातें स्पष्ट हैं–

- पहली बात यह है कि वैयक्तिक सेवाकार्य में वैयक्तिक परामर्श एवं आत्मनिर्भरता दोनों सम्मिलित हैं।
- दूसरी बात यह है कि सहायता केवल किसी विशेष संस्था के प्रतिनिधि अर्थात् कर्मचारी द्वारा उपलब्ध की जाती है, जो समाज कार्य में प्रशिक्षण प्राप्त हो और यह सहायता निश्चित नीतियों के अनुसार दी जाती है।

स्वीथन बौबर्स (1949) ने इस सम्बन्ध में कहा कि "वैयक्तिक सेवाकार्य एक कला है जिसमें मानवीय सम्बन्धों के विज्ञान के ज्ञान और सम्बन्धों में निपुणता का प्रयोग इस दृष्टि से किया जाता है कि व्यक्ति में उसकी योग्यताओं और समुदाय के साधनों को गतिमान किया जाये जिससे सेवार्थी और उसके पर्यावरण के कुछ या समस्त भागों के बीच उच्चतर समायोजन स्थापित हो सके।"

- **वर्तमान स्वरूप**

वर्तमान वैयक्तिक सेवा कार्य मूलरूप से वैयक्तिक असामंजस्य की समस्याओं के समाधान पर जोर देता है। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए सेवार्थी से वैयक्तिक–व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक समझा जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि कार्यकर्ता में वास्तविक सहानुभूति और आत्मीयता उत्पन्न करने की योग्यता हो। कार्यकर्ता सेवार्थी की भावनाओं को समझने, उसकी समस्या के विषय में उसके विचारों का पता लगाने और उसके साथ मिलकर उसकी समस्या को सुलझाने का प्रयास कर सके। कार्यकर्ता और सेवार्थी के सम्बन्ध दो प्रकार के होते है–

1. **विषयात्मक सम्बन्ध**– यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका आधार वास्तविकता होती है। अर्थात् कार्यकर्ता के विषय में सेवार्थी जो मत स्थापित करता है, वह उसकी निपुणता, नम्रता, कार्यक्षमता और ज्ञान पर आधारित होता है।
2. **आत्मचेतनात्मक सम्बन्ध**– यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका आधार सेवार्थी की आत्मचेतनात्मक भावनाओं पर आधारित होता है। अर्थात् सेवार्थी कार्यकर्ता को भावात्मक रुप से देखने लग जाता है और उसके समस्याओ के समाधान के लिये वह उसी

गम्भीरता से प्रयासरत होता है जैसे वह उसकी स्वयं की समस्या हो। इस तरह के सम्बन्धों में सेवार्थी और कार्यकर्ता भावनात्मक स्तर पर एक रूप हो जाते हैं।

उक्त दोनो प्रकारों में सेवार्थी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कार्यकर्ता को कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियायें अपनानी होती हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि सेवार्थी की समस्याओं का स्वरूप कैसा है? कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं की परिचयात्मक प्रस्तुति आपकी जानकारी व प्रयोग के लिये प्रस्तुत है--

- **साक्षात्कार**

सेवार्थी की समस्याओं को समझने के लिए आवश्यक है कि उससे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित की जाये। समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है कि सेवार्थी के इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त की जाए। साक्षात्कार करते समय कार्यकर्ता को चाहिए कि वह सेवार्थी की वर्तमान परिस्थिति का ध्यान रखे और प्रक्रिया को उसी स्थान से आरम्भ करे जिस स्थान पर सेवार्थी उस समय हो।

- **आत्मज्ञान**

लोगों की सहायता करने के उद्देश्य से जुड़े किसी भी व्यवस्था में सम्बन्धों के सचेत प्रयोग के लिए कार्यकर्ता में आत्मज्ञान होना अनिवार्य है। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि उसने इस व्यवसाय को किन प्रेरणाओं के आधार पर ग्रहण किया है। उसको अपनी आत्म चेतना, पक्षपात और विशिष्ट रुचि का भी ज्ञान होना चाहिए। समस्या के निदान के लिए न केवल सेवार्थी की भावनाओं का ज्ञान आवश्यक है बल्कि कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं का भी ज्ञान होना चाहिए और उसमें इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि अपनी और सेवार्थी की भावनाओं के अन्तर को समझ सके।

- **मूल्य**

यह कहना उचित है कि कार्यकर्ता को अपने मूल्य बलपूर्वक सेवार्थी के सर नहीं मढ़ना चाहिए। जहाँ परिस्थितियों में सामंजस्य या समायोजन की समस्या हो मूल्यों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

- **व्यक्तिकरण**

व्यक्तिकरण का अर्थ है प्रत्येक सेवार्थी के विशेष गुणों को ज्ञात करना और समझना। साथ ही सिद्धान्तों एवं प्रणालियों के विविध प्रयोगों द्वारा प्रत्येक सेवार्थी की सहायता इस प्रकार करना कि वह उच्चतर सामंजस्य प्राप्त कर सके।

कार्यकर्ता की योग्यताएँ व निपुणताएँ :

प्राथमिक विधि के रूप में वैयक्तिक कार्य की पद्धति को अपनाकर समाज कार्य करने वाले कार्यकर्ता में कुछ अन्तरनिहित प्रतिभाओं के साथ–साथ कुछ दायित्व भी होना आवश्यक है। समाज विज्ञानिओं द्वारा रेखांकित किये गये दायित्व निम्नानुसार हैं–

1. **पक्षपात रहित**– कार्यकर्ता को किसी भी दशा में सेवार्थी के प्रति पूर्वाग्रह और पक्षपातपूर्ण मत न रखते हुए सेवार्थी को विषयात्मक दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

2. **मानवीय व्यवहार का ज्ञान**– मानवीय व्यवहार की गहरी समझ और जानकारी के लिये यह आवश्यक है कि कार्यकर्ता समाज कार्य के साथ–साथ मानव व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न विज्ञानों अर्थात् औषधि–शास्त्र, मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा, समाजशास्त्र और दर्शन शास्त्र का अध्ययन करे।

3. **सुनने और सावधानी से देखने की योग्यता**–कार्यकर्ता को चाहिये कि वह व्यक्ति को इस बात का अवसर प्रदान करे कि वह अपनी भावनायें प्रकट कर सके और अपनी समस्या के विषय में बता सके। साथ ही साथ उसे व्यक्ति के व्यवहार का भी निरीक्षण करते रहना चाहिये।

4. सेवार्थी की वर्तमान स्थिति को समझने और उसकी स्थिति और योग्यताओं के अनुसार उसकी सहायता का कार्यक्रम बनाने की योग्यता कार्यकर्ता के लिए अनिवार्य है।

5. सेवार्थी के अन्दर आत्मीयता की भावना उत्पन्न करने और उसकी भावनाओं को समझने की योग्यता भी कार्यकर्ता के लिए अनिवार्य है।

6. सेवार्थी के सम्बन्ध में छोटी–छोटी बातों का भी ध्यान रखना चाहिये जिससे उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो। उदाहरणस्वरूप मिलने का समय निश्चित करने में उसकी सुविधा देखनी चाहिये।

7. साक्षात्कार एकान्त स्थान पर करना चाहिये जिससे सेवार्थी को किसी प्रकार का संकोच न हो।

8. कार्यकर्ता को चाहिये कि वह सेवार्थी का सहयोग अपनी समस्या के अध्ययन, निदान, और चिकित्सा में प्राप्त करे।

9. सेवार्थी की समस्या, उसके व्यक्तित्व एवं योग्यताओं को सामने रखकर प्रणालियों और लक्ष्यों में परिवर्तन करने के लिए तैयार रहना चाहिए अर्थात् लचीलेपन के साथ कार्य करना चाहिये।

समाज कार्य के सिद्धान्त

1. भावनाओं को प्रकट करना :

वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी के इस अधिकार को स्वीकृत किया जाता है कि उसे अपनी भावनाओं को प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है चाहे वह भावनायें नकारात्मक ही क्यों न हों। कार्यकर्ता उद्देश्य पूर्ण रुप से सेवार्थी की बात सुनता है। वह इन भावनाओं के प्रकटन को न तो निरुत्साहित करता है और न ही उसकी निन्दा करता है।

2. नियन्त्रित भावनात्मक सम्बन्ध

कार्यकर्ता को चाहिये कि वह सेवार्थी की भावनाओं को संवेदनशीलता के साथ समझे और उन भावनाओं के प्रति उसका जो प्रतिक्रिया हो उसकी आधार ज्ञान और व्यावसायिक उद्देश्य हो। सेवार्थी के प्रति कार्यकर्ता की जो सहानुभूति हो वह एक व्यावसायिक और वास्तविक सहानुभूति हो।

3. स्वीकृति

स्वीकृति का अर्थ यह है कि सेवार्थी से उसकी वर्तमान स्थिति के अनुसार व्यवहार किया जाये और उसकी परिस्थिति के अनुसार ही उसके विषय में कोई मत स्थापित किया जाये। सेवार्थी की शक्तियों और दुर्बलताओं, उसके अनुरूप एवं प्रतिकूल गुणों, उसकी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं और उसकी रचनात्मक एवं विनाशकारी मनोवृत्तियों और व्यवहार के अनुसार ही उससे व्यवहार करना चाहिये। परन्तु सेवार्थी से व्यवहार करते समय उसके आन्तरिक महत्व एवं वैयक्तिक मूल्य का ध्यान रखा जाता है।

4. अनिर्णयात्मक मनोवृत्ति

वैयक्तिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि उसकी मनोवृत्तियां सेवार्थी के प्रति अनिर्णयात्मक हों। अर्थात् वह सेवार्थी का गुण–दोष निर्धारित करने और उसके व्यवहार की नैतिक रूप से निन्दा करने का प्रयास नहीं करता। यह आवश्यक है कि वह सेवार्थी की मनोवृत्तियों, आदर्शों या क्रियाओं का वास्तविक रूप से मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन में समाज के वर्तमान एवं प्रचलित मूल्यों को भी सामने रखा जाता है परन्तु इसका उद्देश्य सेवार्थी को नैतिक रूप से दोषी ठहराकर उसकी निन्दा करना नहीं है।

5. सेवार्थी का आत्मनिर्देशन

वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली का मौलिक सिद्धान्त यह है कि सेवार्थी को अपनी समस्या को समझने उसके निदान में सम्मिलित होने और उसको अपनी रुचि के अनुसार सुलझाने का पूरा

अधिकार होना चाहिये। सेवार्थी को इस बात का पूरा अधिकार है कि वह सहायता लेना या अपनी समस्या का समाधान अपनी रुचि के विरूद्व करना स्वीकृत न करे। आवश्यक है कि समस्या का जो भी समाधान किया जाये और सेवार्थी के विषय में जो भी निर्णय किया जाये वह सेवार्थी का अपना निर्णय हो। समस्या के वास्तविक एवं स्थाई समाधान के लिए आवश्यक है कि सेवार्थी को इस बात का अवसर दिया जाये कि वह अपने अंह का विकास कर सके और अपने जीवन की महत्वपूर्ण बातों के विषय में स्वयं स्वतन्त्र रूप से निर्णय कर सके। सेवार्थी की अंह–शक्ति का विकास और उसके आत्मनिर्देशन में परस्पर सम्बन्ध है।

6. गोपनीयता

सेवार्थी के विषय में कार्यकर्ता को जो कुछ ज्ञात हो उसे गुप्त रखना कार्यकर्ता का नैतिक एवं व्यावसायिक कर्त्तव्य है। वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी अपने जीवन के संवेगात्मक पक्षों को व्यक्त करता है। इन सूचनाओं को गुप्त रखना अत्यधिक आवश्यक है। यदि सेवार्थी को गोपनीयता का विश्वास न होगा तो वह अपनी समस्याओं को पूर्ण रुपेण व्यक्त करने में संकोच का अनुभव करेगा।

बहुधा सेवार्थी के रहस्य की जानकारी संस्था के अन्दर और बाहर के अन्य व्यावसायिक व्यक्तियों को भी होती है। ऐसी परिस्थिति में इन सब कर्मचारियों पर इन सूचनाओं को गुप्त रखने का उत्तरदायित्व है। सेवार्थी के विषय में सूचना प्राप्त करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. सेवार्थी से उतनी ही सूचना प्राप्त करनी चाहिए जितनी सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक है।
2. संस्था के अन्दर सूचना केवल उन्हीं व्यक्तियों को और उसी सीमा तक दी जानी चाहिए जितना सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक हो।
3. अन्य संस्थाओं एवं व्यक्तियों से परामर्श सेवार्थी की अनुमति लेकर करना चाहिए।
4. केवल उसी सूचना को अभिलिखित करना चाहिए और केवल उन्हीं अभिलेखों को सुरक्षित रखना चाहिए जो सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक हो और अभिलेखों का प्रयोग संस्था के कार्यों के लिए सेवार्थी की अनुमति के आधार पर होना चाहिए।

वैयक्तिक सेवाकार्य का क्षेत्र

वैयक्तिक सेवाकार्य प्रत्येक उस क्षेत्र में प्रयोग किया जा सकता है, जिसमें व्यक्तियों को समायोजन की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हो।

कुछ क्षेत्र जिनमें वैयक्तिक सेवाकार्य का विशेष प्रकार से प्रयोग होता है इस प्रकार हैः

परिवार कल्याण

इस क्षेत्र में वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रयोग परिवार के सदस्यों की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं अर्थात् उनकी स्थिति एवं भूमिकाओं से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। इस क्षेत्र में यद्यपि समाज कार्य की अन्य प्रणालियों का भी प्रयोग होता है तथापि मुख्य रूप से वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रयोग होता है।

- **बाल अपराध या अन्य अपराध**

  इस क्षेत्र में अर्थात् बाल अपराधियों या अन्य अपराधियों के सुधार के लिए वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। अपराधी के साथ वैयक्तिक–व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करके कार्यकर्ता उसकी समस्या का वैज्ञानिक अध्ययन करता है और अपने ज्ञान, निपुणता एवं अनुभव के आधार पर उसके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

- **चिकित्सालयों में समाजकार्य**

  वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रयोग चिकित्सालयों में रोगियों के समायोजन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। देखा गया है कि बहुत से शारीरिक रोग संवेगात्मक एवं मानसिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। इन सब समस्याओं को सुलझाने के लिए वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रयोग किया जाता है। चिकित्सालयों में रोगियों के साथ जब वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रयोग होता है तो उसे भैषज्य समाजकार्य (मेडिकल सोशल वर्क) कहते है।

- **मानसिक रोग चिकित्सा**

  मानसिक रोगों की चिकित्सा में भी वैयक्तिक सेवा कार्य का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक विज्ञानों ने सिद्ध कर दिया है कि बहुधा मानसिक विचलन का कारण सामाजिक समायोजन का अभाव है। औषधियों के साथ–साथ जब मनोवैज्ञानिक परामर्श, संवेगात्मक सहारा एवं अहं सम्बन्धी सहायता मिलती है तभी समस्या का स्थाई रूप से समाधान होता है।

- **शिशु कल्याण**

  शिशु कल्याण के क्षेत्र में भी वैयक्तिक सेवाकार्य का प्रयोग किया जाता है। अनाथ बालकों के दत्तक ग्रहण या उनके लिए पालन गृह ढूँढ़ने में या उन्हे संस्थाओं अर्थात्

आश्रमों आदि में रखने के सम्बन्ध में वैयक्तिक सेवा कार्य का उपयोग किया जाता है। इन सब परिस्थितियों में बालक और उसके पर्यावरण में समायोजन की समस्या होती है। वैयक्तिक सेवा कार्य इन समस्याओं को सुलझाने में विशेषज्ञ सेवा का रूप रखता है।

- **श्रम कल्याण**

  श्रम कल्याण के क्षेत्र में भी वैयक्तिक सेवा कार्य का प्रयोग औधोगिक परामर्श के रूप में किया जाता है। श्रमिकों की अभ्यन्तर वैयक्तिक समस्याओं को सुलझाना उनकी उत्पादन शक्ति एवं उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए अनिवार्य हैं। बहुधा औधोगिक झगड़े श्रमिकों के असामंजस्य के कारण होते है।

अतः वैयक्तिक सेवा कार्य का प्रयोग उद्योगों मे परामर्श के रूप में किया जाता है।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त वैयक्तिक सेवा कार्य का प्रयोग किसी भी ऐसे क्षेत्र में हो सकता है और होता है जहाँ वैयक्तिक असामंजस्य हो और जहाँ व्यक्ति को अपनी स्थिति एवं उससे सम्बन्धी भूमिकाओं के सम्पादन में कठिनाई का अनुभव हो रहा हो। इन दिनों परिवार नियोजन के क्षेत्र में भी वैयक्तिक सेवा कार्य का प्रयोग किया जा रहा है।

सामाजिक सामूहिक कार्य (Social Group Work)

प्राथमिक पद्धतियों में दूसरी और महत्वपूर्ण पद्धति सामाजिक सामूहिक कार्य (Social Group Work) है। आइये इसके प्रमुख पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करें।

इस पद्धति की उत्पत्ति 19 वीं शताब्दी के अन्त में सेट्लमेंन्ट हाउस आन्दोलन से हुई। आरम्भ में इस आन्दोलन का उद्देश्य बेकार व्यक्तियों के लिए शिक्षा और मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराना था। सेट्लमेंन्ट हाउस आन्दोलन ने गृह अभाव, अस्वच्छ वातावरण एवं न्यूनतम पारिश्रमिक की समस्या को सुलझाने के लिए सामाजिक सुधार का प्रयास किया। सेट्लमेंन्ट हाउसेज में व्यक्तियों के समूहों की सहायता की जाती थी। पृथक–पृथक व्यक्तियों की समस्याओं पर इनमें ध्यान नही दिया जाता था क्योकि उसके लिए अन्य संस्थाए थी।

इसके अतिरिक्त बढ़ते हुए औधोगीकरण और नगरीकरण के कारण वैयक्तिक सम्बन्धों का अभाव होने लगा था। अपनत्व की भावना और हम की भावना का अभाव होने लगा। अमेरिका में बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण वैयक्तिक सम्बन्धों को पुनः स्थापित करने और अपनत्व की भावना या हम की भावना के विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा।

सामूहिक जीवन का व्यक्तित्व के विकास में महत्व स्वीकृत किया जाने लगा। इन दो कारकों ने सामूहिक कार्य की प्रणालियों एवं उद्देश्यों में परिवर्तन कर दिया।

कुछ समय उपरान्त मानसिक चिकित्सालयों एवं बालनिर्देशन केन्द्रों ने मानसिक रोगियों के लिए मनोरंजन कार्यक्रमों का प्रयोग एक चिकित्सा प्रणाली के रूप में करना आरम्भ किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सामूहिक कार्य का प्रयोग किया जाने लगा। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विकास ने यह बात स्पष्ट कर दी कि व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति की सामूहिक जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं की संन्तुष्टि आवश्यक है। यह समझा जाने लगा कि व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति में सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करने, अन्य व्यक्तियों के साथ परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने, मतभेदों को सहनशीलता की दृष्टि से देखने, सामान्य कार्यक्रमों में भाग लेने और समूह के हितों और अपने हितों में अनुरूपता उत्पन्न करने की योग्यता हो। इस विचारधारा ने सामूहिक सेवा कार्य की प्रणाली और उसी संस्थाओं में पर्याप्त परिवर्तन किया। आज सामूहिक सेवा कार्य को एक महत्वपूर्ण आवश्यकता समझा जाने लगा। सामूहिक सेवा कार्य अब केवल निर्धन एवं बेकार व्यक्तियों के ही लिये नहीं बल्कि मध्य एवं उच्च वर्ग के व्यक्ति भी इससे लाभान्वित होने लगे। सामूहिक सेवा कार्य में सामूहिक क्रियाओं द्वारा व्यक्तित्व का विकास करने का प्रयास किया जाता है।

परिभाषा :

विल्सन एवं राईलैण्ड के अनुसार सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य,''एक प्रक्रिया और एक प्रणाली है जिसके द्वारा एक कार्यकर्ता सामूहिक जीवन को प्रभावित करता है। यह कार्यकर्ता समूह की परस्पर सम्बन्धी प्रक्रिया को सचेत रूप से निर्देशित करता है जिससे कि प्रजातंत्रवादी लक्ष्यों को प्राप्त कर सके।''

हामिल्टन के अनुसार, ''सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य नेतृत्व की योग्यता और सहकारिता का विकास और एक सामाजिक उद्देश्य के लिए सामूहिक अभिरुचि को प्रोत्साहन देना है।

ट्रेकर के अनुसार,''सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में एक कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्ता कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में व्यक्तियों की परस्पर सम्बन्धी प्रक्रिया का मार्गदर्शन करता है जिससे वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यताओं एवं योग्यताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों से लाभान्वित हो सके। उपरोक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि –

1. सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य भी समाज कार्य की एक प्रजातांत्रिक प्रणाली है। जिस प्रकार वैयक्तिक सेवा कार्य में व्यक्ति पर बलपूर्वक नियंत्रण नही किया जाता और उसे अपनी रुचि के अनुसार अपने व्यक्तित्व के विकास का अधिकार दिया जाता है उसी प्रकार सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य में भी समूह को किसी विशेष लक्ष्य या मूल्य बलपूर्वक स्वीकृत करने के लिए विवश नहीं किया जाता। समूह को पूरा अधिकार दिया जाता है कि वह अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य स्वयं निश्चित करे और अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्रमों का निर्माण करें।
2. सामाजिक सामूहिक कार्य व्यक्तियों को सामाजिक प्रजातांत्रिक जीवन के लिए तैयार करता है और उनमें नेतृत्व की योग्यता का विकास करता है।
3. सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य व्यक्तियों में एक दूसरे से रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का विकास करना है। इस प्रक्रिया में सामूहिक कार्यकर्ता केवल एक मार्ग प्रदर्शक की स्थिति रखता है। वह एक विशेषज्ञ के रूप में कार्य करता है और समूह के सदस्यों के बीच होने वाली परस्पर सम्बन्धी प्रक्रिया को रचनात्मक आधारों पर निर्देशित करता रहता है।
4. सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य समूह के सदस्यों में आत्म–निर्देशन की योग्यता का विकास करना चाहता है। वह समूह के कार्यक्रमों में वही तक योगदान करता है जहॉ तक समूह को इसकी आवश्यकता हो। वह समूह के कार्यक्रम और उद्देश्य अपनी इच्छा से नहीं बल्कि समूह के सदस्यों की इच्छानुसार और उनके सक्रिय सहयोग से बनाता है।
5. सामूहिक सेवा कार्य में व्यक्ति के विकास के लिए समूह, सामूहिक जीवन और सामूहिक क्रियाओं का एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।
6. सामूहिक सेवा कार्य एक प्रणाली है जिसमें ज्ञान, प्रबोध, सिद्धान्त एवं निपुणताएँ पायी जाती हैं।
7. सामूहिक सेवा कार्य में व्यक्तियों की सहायता सदैव किसी समूह के सदस्य के रूप में की जाती है, व्यक्तिगत रूप से नहीं।
8. सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य किसी संस्था द्वारा किया जाता है। कार्यकर्ता किसी संस्था का कर्मचारी होता है।
9. व्यक्तियों के लिए सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य एक अनुभव है न कि एक प्रणाली। संस्था के अन्तर्गत यह एक नवीन प्रकार का अनुभव और एक ऐसी सेवा का रूप धारण कर लेता है जिसका उद्देश्य लोगों को ऐसी परिस्थितियों में जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से स्थापित की गयी है। एक दूसरे के साथ रहने, कार्य करने और मनोरंजन में भाग लेने का अवसर उपलब्ध करना है। प्रजातांत्रिक मूल्य सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य का प्रमुख सिद्धान्त

है। सामूहिक कार्य व्यक्तियों की आन्तरिक समानता में विश्वास रखता है और प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक जीवन में बराबर का भाग लेने और अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर प्रदान करता है।

सामूहिक सेवा कार्य के चार प्रमुख आधार?

सामूहिक सेवा कार्य	समूह	– समूह के सदस्य
	समुदाय	– आवश्यकताएँ, संसाधन, सेवाएँ
	संस्था	– उद्देश्य, कार्य, कार्यक्रम, साधन एवं सुविधाएँ
	समूह कार्यकर्ता	– वैज्ञानिक ज्ञान, उसकी जानकारी, सिद्धान्त एवं निपुणताएँ

ट्रेकर ने सामूहिक कार्य के मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार किया है–

1. नियोजित समूह निर्माण का सिद्धान्त–

सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य में समूह वह मौलिक इकाई है, जिसके द्वारा व्यक्ति को सेवा प्रदान की जाती है। अतः कार्यकर्ताओं को जानना चाहिए कि सामूहिक परिस्थिति में ऐसे कौन से कारक हैं जो समूह को वैयक्तिक विकास और मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सकारात्मक शक्ति बनाते हैं। समूह के निर्माण के समय कार्यकर्ता अपने इस ज्ञान का प्रयोग करता है। वह इस ज्ञान के आधार पर ही समूह के निर्माण के समय सहायता प्रदान करता है।

2. विशिष्ट उद्देश्यों का सिद्धान्त–

कार्यकर्ता को चाहिए कि वह समूह की इच्छाओं एवं योग्यताओं और संस्था के कार्यों के अनुसार वैयक्तिक एवं सामूहिक विकास के विशिष्ट उद्देश्यों का चेतनापूर्वक निर्माण करे। ऐसा करने में उसे चाहिए कि वह सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं और उद्देश्यों को ध्यान में रखे।

3. उद्देश्य–पूर्ण कार्यकर्ता–समूह सम्बन्ध का सिद्धान्त–

समूह को पूर्ण रूप से समझने के लिए कार्यकर्ता एवं समूह में घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए। यह सम्बन्ध सचेत एवं उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। इसका मुख्य आधार यह होना चाहिए कि कार्यकर्ता समूह के सदस्यों को उनकी वर्तमान स्थिति में स्वीकृत करे और समूह को कार्यकर्ता और संस्था में विश्वांस हो और वह कार्यकर्ता से सहायता लेने के लिए तैयार हो।

4. निरन्तर व्यक्तिकरण का सिद्धान्त–

सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य की मान्यता है कि समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं–

यह कि व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सामूहिक अनुभव का भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रयोग करते है। कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वह समूहों और व्यक्तियों के विषय में यह समझे कि उनमें विकास एवं परिवर्तन होना स्वभाविक है।

5. सामूहिक परस्पर संबंधी क्रिया का सिद्धान्त

सामूहिक सेवा कार्यकर्ता अपने सामाजिक अंश ग्रहण के प्रकार एवं स्तर से सामूहिक परस्पर संम्बन्धी क्रिया को प्रभावित करता है। वह परस्पर सम्बन्धी क्रियाओं का नियंत्रण करता है। उन्हे निर्देशित करता है और चेतना पूर्वक उनका प्रयोग करता है। वह परस्पर संम्बन्धी क्रिया के प्रकार और मात्रा को सक्रिय रुप से प्रभावित करता है। कार्यकर्ता की उपस्थिति सामाजिक प्रक्रिया को सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य प्रक्रिया का रुप प्रदान करती है।

6. प्रजातांत्रिक सामूहिक आत्मनिर्देशन का सिद्धान्त

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य में समूह की सहायता की जाती है कि वह स्वयं निर्णय करे स्वयं अपनी क्रियाओं को निश्चित करे और ऐसा करने में अपनी योग्यतानुसार अधिक से अधिक उत्तरदायित्व स्वीकृत करे। समूह के उपर नियंत्रण करने का प्राथमिक साधन स्वयं समूह ही है।

कार्यकर्ता इस सिद्धान्त को स्वीकृत करता है कि समूह को संस्था की सहायता स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने का पूरा अधिकार है। कार्यकर्ता को यह नही समझना चाहिए कि जो कुछ वह जानता है वही समूह के लिए उचित हैं। उसकी अपेक्षा वह इस बात में विश्वास रखता है कि उसे समूह को पूर्णरुपेण समझना चाहिए जिससे समूह की सहायता की जा सके कि वह यह निश्चित कर सके कि उसके लिए क्या चीज महत्वपूर्ण है।

7. लचीले कार्यात्मक संगठन का सिद्धान्त–

औपचारिक संगठन को लचीला होना चाहिए और उसे प्रोत्साहन उसी समय देना चाहिए जब वह समूह की आवश्यकताओं को पूरा करता हो और उन्ही के अनुसार कार्य कर रहा हो। समहों के औपचारिक संगठन को समूह के साथ–साथ परिवर्तित होना चाहिए।

8. प्रगतिशील कार्यक्रम सम्बन्धी अनुभव का सिद्धान्त–

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य में समूह का कार्यक्रम सदस्यों की वर्तमान अभिरुचि, आवश्यकताओं, अनुभवों एवं योग्यताओं के अनुसार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम का विकास समूह की योग्यता के विकास के साथ–साथ होना चाहिए।

समूह का कार्यक्रम कार्यकर्ता या संस्था या किसी बाहरी संस्था को निश्चित नही करना चाहिए। कार्यकर्ता विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की ओर संकेत कर सकता है और ऐसा करते समय उसे समूह के विकास के स्तर को ध्यान में रखना चाहिए।

9. साधनों के प्रयोग का सिद्धान्त–

कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व हे कि वह समूह की सहायता करे कि वह समुदाय और संस्था के साधनों का उचित प्रयोग कर सके।

10. मूल्यांकन का सिद्धान्त–

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य में यह आवश्यक है कि प्रक्रियाओं और कार्यक्रमों के परिणामों का निरन्तर मूल्यांकन किया जाए। इस प्रक्रिया में कार्यकर्ता, समूह और संस्था सभी भाग लेते हैं। मूल्यांकन से इस बात का पता चलता है कि उद्‌देश्यों में कहाँ तक सफलता मिल सकी है और कार्यक्रम सफल हुए है या असफल।

सामूहिक सेवा कार्यकर्ता / नेतृत्व की भूमिका

सामूहिक सेवा कार्यकर्ता वास्तव में एक ''सहायता देने वाला व्यक्ति है।'' उसे सामूहिक नेता कहना यद्यपि उचित न होगा। उसकी स्थिति समूह के सहायक सामर्थ दाता की स्थिति है। वह समूह के साथ मिलकर कार्य करता है समूह के लिए कार्य नही करता। उसका प्रभाव अप्रत्यक्ष है न कि प्रत्यक्ष। वह समूह के सदस्यों द्वारा कार्य कराता है और समूह एवं संस्था के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

सामूहिक सेवा कार्यकर्ता समूह की सहायता करता है

- जिससे कि समूह अपने उद्‌देश्यों को निश्चित कर सके।
- संस्था के उद्‌देश्यों को समझ सके।
- हम की भावना" और अपने अस्तित्व की चेतना उत्पन्न कर सके।
- समूह के सदस्यों की अपनी योग्यताओं एवं सीमाओं के समझने में सहायता।
- उन आन्तरिक समस्याओं को भी पहचान कर सके जो उसके उद्‌देश्यों की प्राप्ति में बाधक हो रही है
- वह उन समस्याओं को सुलझाने के लिए साधन एवं उपाय ढूढ़ने में सहायता करता है। वह संस्था या समुदाय के आवश्यक साधनों को प्राप्त कर सके और कभी–कभी इस सम्बन्ध में उपदेश देता है।

- वह अन्य विभिन्न मत रखने वाले समूहों को समझ सके और समूहों के बीच सहयोगी सम्बन्ध स्थापित कर सके।
- समूह की सहायता के अतिरिक्त कार्यकर्ता व्यक्तियों की सहायता करता है कि वे समूह की स्वीकृति प्राप्त कर सके और समूह के सदस्यों से उत्तरदायी सम्बन्ध स्थापित कर सके।

कार्यकर्ता पहले समूह के सदस्यों से सकारात्मक सम्बन्ध विकसित करता है, तत्पश्चात् वह समूह के सदस्यों की सहायता करता है जिससे कि वह एक–दूसरे से रचनात्मक और सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सके एवं उनका समाजीकरण हो सके। आरम्भ में कार्यकर्ता को चाहिए कि वह समूह के सदस्यों के प्रति सहानुभूति एवं स्नेह का प्रदर्शन करे, तत्पश्चात् ही वह संगठन एवं नियोजन पर बल दे सकता है।

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्यकर्ता की मौलिक निपुणताएँ

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्यकर्ता एक प्रणाली है। प्रत्येक कार्यकर्ता को संस्था एवं सामुदायिक परिस्थिति के एक भाग के रुप में कार्य करने की निपुणता होनी चाहिए। उसे संस्था एवं सामुदाय का ज्ञान होना चाहिए। अपने एवं समूह के विषय में उसे निरन्तर ज्ञान होना चाहिए। **ट्रेकर** ने सामूहिक सेवा कार्यकर्ता की निम्नलिखित निपुणताए बताई हैं –

1. उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता

सामूहिक सेवाकार्यकर्ता में समूह की स्वीकृति प्राप्त करने एवं समूह से सकारात्मक एवं व्यवसायिक रुप से सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता होनी चाहिएं। उसके अन्दर इस बात की भी निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह की एक दूसरे के स्वीकृत करने और समूह के साथ सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग करने में सहायता कर सके।

2. समूह की परिस्थिति का विश्लेषण करने में निपुणता

सामूहिक सेवाकार्यकर्ता में समूह के विकास के स्तर को समझने, उसकी आवश्यकताओं को ज्ञात करने और यह समझने की निपुणता होनी चाहिए कि समूह जितनी जल्दी आगे बढ़ने को तैयार है। इसके लिए आवयक है कि कार्यकर्ता में समूह का प्रत्यक्ष रुप से प्रत्यक्षीकरण करने की निपुणता हो। कार्यकर्ता में इस बात की निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह की सहायता कर सके वह अपने विचारों को व्यक्त कर सके, उद्देश्यों का निर्माण कर सके, अति समीप लक्ष्यों का स्पष्टीकरण कर सके और अपनी शक्तियों एवं कमजोरियों को समझ सके।

3. समूह के साथ भाग लेने मे निपुणता

कार्यकर्ता को समूह के प्रति अपनी भूमिका की व्याख्या करने, सम्पन्न करने और परिवर्तित करने की निपुणता होनी चाहिए। कार्यकर्ता में इस बात की भी निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह के सदस्यो की सहायता करें कि वे सामूहिक क्रियाओं में भाग ले सके, नेताओं का चुनाव कर सके और अपनी क्रियाओं का उत्तरदायित्व स्वीकृत कर सके।

4. समूह की भावनाओं से निपटने की निपुणता

कार्यकर्ता में इस बात की निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में सहायता कर सके, चाहे वे भावनाएँ सकारात्मक हो या नकारात्मक। कार्यकर्ता में इस बात की भी निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह की सहायता कर सके कि वे सामूहिक या अन्तर सामूहिक संघर्ष की परिस्थिति का विश्लेषण कर सके।

5. कार्यक्रम के विकास में निपुणता

कार्यकर्ता में समूह के विचारों का मार्ग–दर्शन करने की निपुणता होनी चाहिए जिससे उनकी अभिरुचि एवं आवश्यकताएँ प्रकट हो सकें और समझी जा सकें। कार्यकर्ता में इस बात की भी निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह के ऐसे कार्यक्रमों के विकास में सहायता कर सकें, जिन्हें समूह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाहता है।

6. संस्था एवं समुदाय के साधनों के प्रयोग में निपुणता

कार्यकर्ता में इस बात की निपुणता होनी चाहिए कि वह समूहों को यह बताए कि किन साधनों का प्रयोग कार्यक्रम की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है। कार्यकर्ता में इस बात की भी निपुणता होनी चाहिए कि जब व्यक्तियों की आवश्यकताएँ समूह द्वारा पूरी न हो सके तो उन्हें विशेषज्ञ सेवाओं के प्रयोग के लिए सूचना एवं सुविधा उपलब्ध करें।

7. मूल्यांकन में निपुणता

कार्यकर्ता मे इस बात की निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह के साथ कार्य करते समय विकास सम्बन्धी प्रक्रिया को अभिलिखित कर सके। उसे अपने अभिलेखों का प्रयोग करने और समूह की सहायता करने में भी वह उन्नति प्राप्त करने के लिए अपने अनुभव पर विचार कर सके।

सामुदायिक संगठन

प्राथमिक पद्धतियों की कड़ी में सामुदायिक संगठन समाज कार्य के तीसरी महत्वपूर्ण विधि है सेवाकार्य के समान सामुदायिक संगठन की प्रणाली की उत्पत्ति भी दान संगठन समिति आन्दोलन से हुई। 1840 में न्यूयार्क नगर में 30 दान समितियाँ थी। इन समितियों के कार्यो में सहयोग

स्थापित करने और इन्हे समन्वित करने की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1843 में एक सामुदायिक संगठन स्थापित किया गया। तत्पश्चात अमेरिका में Buffalo नाम के स्थान पर 1877 में एक Charity Organization Society (COS) की स्थापना हुई। सी0 ओ0 एस0 का उद्देश्य वर्तमान दान एवं समाज सेवी समितियों को समन्वित करना, सेवाओं की द्वितीयावृत्ति को समाप्त करना और समाज सेवी संस्थाओं में प्रतिस्पर्द्धा की अपेक्षा सहयोग को प्रोत्साहन देना था। इन समस्याओं के समाधान के लिए 1882 में कुछ दान संगठन समितियों के अन्तर्गत विशेष परिषदें स्थापित की गयी। इन परिषदों के सदस्य नगर की प्रमुख दान समितियों के प्रतिनिधि होते थे। परन्तु कुछ लोगों का यह विचार हुआ कि कल्याणकारी संस्थाओं को समन्वित करने और कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिए एक पृथक संस्था होनी चाहिए। इस विचार के अनुसार 1908 में Pittsburgh में Community Welfare Council का निर्माण हुआ। तत्पश्चात इसी प्रकार की संस्थाए Council of Social Agencies के नाम से विभिन्न स्थानों पर स्थापित हुई। 1960 में 700 Community Welfare Councils केन्द्रीय संघ यूनाईटेड कम्युनिटी फन्डस एण्ड काउन्सिल्स की सदस्य थी। इन संस्थाओं का उद्देश्य कल्याणकारी क्रियाओं का समन्वय करना, सार्वजनिक एवं ऐच्छिक संस्थाओं में सहयोग स्थापित करना, सेवाओं के स्तर को ऊँचा करना और बनाए रखना, स्वास्थ्य एवं कल्याण के विकास के लिए सामुदायिक नेतृत्व का विकास करना और सामाजिक नियोजन करना है। Social Welfare का कार्य अब समुदाय की सामाजिक आवश्यकताओं का अन्वेषण करना और संस्थाओं के प्रयासों को समन्वित करना है।

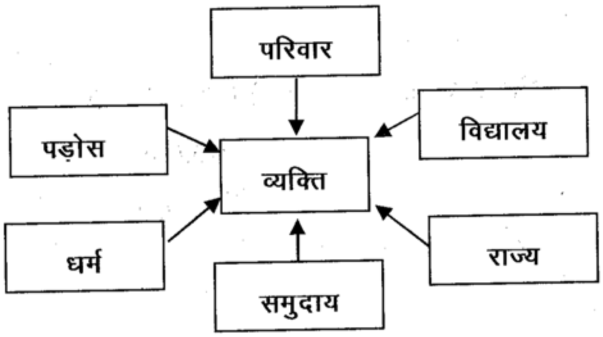
नगरों एवं महानगरों में सामुदायिक संगठन 6 प्रकार की संस्थाओं द्वारा किया जाता है:

1. Community Welfare Council– जिसकाउद्देश्य सामुदायिक नियोजन और स्थानीय स्वास्थ्य कल्याण एवं मनोरंजन सम्बन्धी सेवाओं का समन्वय है।
2. **कम्युनिटी चेस्ट**–जिसका उद्देश्य धन एकत्र करने के कार्य को संगठित रुप से करना और धन की प्राप्ति एवं वितरण केन्द्रीय रुप से करना है।
3. Community Council– यह नागरिकों का एक समूह होता है जिसका उद्देश्य एक स्थानीय क्षेत्र की सामाजिक शक्तियों का किसी विशेष सामाजिक समस्या के समाधान के लिए समन्वय करना है।
4. **Neighbourhood Council-** यह नागरिकों की एक समिति है जिसका उद्देश्य एक पड़ोस की सामाजिक दशाओं में उन्नति करना है।

5. **Social Service Exchange-** यह कल्याण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थाओं का एक संघ है जो कल्याण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थाओं द्वारा सहायता पाने वाले समस्त व्यक्तियों का अभिलेख रखता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक समाज सेवी संस्था को यह पता रहे कि सहायता का प्रार्थी किसी अन्य संस्था से भी तो सहायता नहीं पा रहें हैं। साथ ही साथ इसका उद्देश्य धोखे, द्वितीया वृत्ति एवं धन के विनाश को रोकना है।

6. **व्यक्तिगत समाजसेवी संस्थायें**– अनेक समाज सेवी संस्थायें जैसे परिवार कल्याण संस्थायें, शिशु रक्षा संस्थायें, दत्तक ग्रहण संस्थायें, एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थायें सामुदायिक संगठन का कार्य करती हैं। यह संस्थायें मनोरंजन सम्बन्धी सेवाओं का विकास या मनोचिकित्सा औषधालय आदि की स्थापना और उनका संचालन करती रहती है।

समुदाय



परिभाषा–

सामुदायिक संगठन की उत्पत्ति के वर्णन के पश्चात अब उसकी परिभाषाओं का उल्लेख आवश्यक है।

एम.सी. नाइल के अनुसार, "सामुदायिक संगठन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समुदाय के सदस्य व्यक्तिगत नागरिकों के रुप में या समूहों के प्रतिनिधियों के रुप में एक–दूसरे के साथ संयुक्त होते हैं, जिससे समाज कल्याण सम्बन्धी आवश्यकताओं को निश्चित कर सके, उन्हें पूरा करने की योजना बना सके और आवश्यक साधनों को गतिमान कर सके।

लिण्डमैन के अनुसार, "सामुदायिक संगठन सामाजिक संगठन का वह चरण है, जिसके द्वारा समुदाय अपने मामलों को प्रजातान्त्रिक रुप से नियन्त्रित करने और अपने विशेषज्ञों, संगठनों, समितियों और संस्थाओं से मान्य परस्पर सम्बन्धों द्वारा उच्चतम सेवा प्रदान करने का सचेत प्रयास

करता है। सामुदायिक संगठन की मुख्य समस्या यह है कि प्रजातान्त्रिक प्रक्रियाओं और विशेषज्ञों में एक कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाये।"

सामुदायिक संगठन की एक महत्वपूर्ण परिभाषा **एम.जी.रॉस** ने दी है, जिसके अनुसार सामुदायिक संगठन, एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समुदाय अपनी आवश्यकताओं या उद्देश्यों को निश्चित करता है, उनको क्रमबद्ध करता है, इनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने का विश्वास और इच्छा उत्पन्न करता है, आन्तरिक और बाहरी साधनों का पता लगाता है, उनकी प्राप्ति के लिए सक्रिय होता है, और इस प्रक्रिया द्वारा समुदाय में सहयोग एवं सहकारिता की मनोवृत्तियों और व्यवहारों में वृद्धि एवं विकास करता हैं।

सामुदायिक संगठन के उद्देश्य

सन् 1939 में **नैशनल कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क** ने एक समिति नियुक्त की जिसका नाम लेनकमेटी था। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में सामुदायिक संगठन के निम्नलिखित उद्देश्य बताएं।

- **सामान्य लक्ष्य**

सामुदायिक संगठन का सामान्य लक्ष्य यह है कि सामाज कल्याण साधनों और समाज कल्याण सम्बन्धी आवश्यकताओं के बीच एक प्रगतिशील एवं क्षमताशील समायोजन स्थापित किया जाये और उसका प्रतिपालन किया जाये।

- **द्वितीयक लक्ष्य**

1. ठोस नियोजन एवं प्रयास के लिए एक उचित वास्तविक आधार प्राप्त करना और उसका प्रतिपालन करना।
2. कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम और सेवाओं को आरम्भ करना, विकासित करना और परिवर्तित करना जिससे साधनो एवं आवश्यकताओं के बीच उच्चतर समायोजन स्थापित हो सके।
3. समाज कार्य के स्तर को ऊँचा करना और वैयक्तिक संस्थाओं की कार्यक्षमता को बढाना ।
4. परस्पर सम्बन्धों में उन्नति करना और सुविधा प्रदान करना और ऐसे संगठनो,समूहो और व्यक्तियो में सहयोग उत्पन्न करना जो समाज कल्याण कार्यक्रम और सेवाओं से सम्बद्ध है।
5. जनता को कल्याण सम्बन्धी समस्याओ और आवश्यकताओ एवं समाज कार्य के उद्देश्यो, कार्यक्रमो और प्रणालियो के विषय में उच्चतर ज्ञान प्राप्त करना।
6. समाज कल्याण सम्बन्धी क्रियाओं के प्रति जनता का समर्थन और सहयोग प्राप्त करना।

7. आर्थिक सहायता जिसके अन्तर्गत कर–निधि, ऐच्छिक अंशदान, एवं अन्य साधनो की आय सम्मिलित है।

समुदायिक संगठन के चरण

सेंडर्सन एण्ड पोलोसन के अनुसार सामुदायिक संगठन के निम्नलिखित चरण है–

1. **समुदाय का विश्लेषण एवं निदान**– सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि समुदाय के विषय में पूर्णरुप से जानकारी प्राप्त की जाये। आवश्यक है कि समुदाय के ढाँचे, जनसंख्या की बनावट, व्यवहारिक विशेषताओं, और प्रमुख सामाजिक शाक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाये। सामुदायिक प्रथाओं एवं परम्पराओं, जनरीतियो एवं मनोवृत्तियो, सामाजिक सम्बन्धो एवं संघर्षो, सामुदायिक नेताओं और परस्पर विरोधी शाक्तियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

2. **गति** – मौलिक समस्या यह है कि सामान्य आवश्यकताओं के प्रति सामान्य रुचि विकसित की जाये। समुदाय को क्रियाशील बनाने के लिए आवश्यक है कि उसमें उन्नति की इच्छा और वर्तमान परिस्थिति से असंतुष्टि विकसित की जाये।

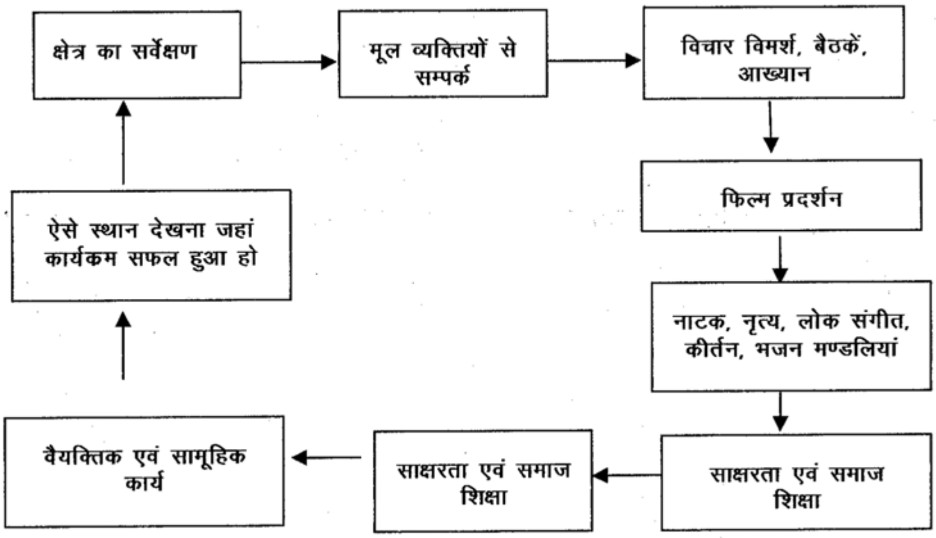
3. **परिस्थिति**– समुदाय के विश्लेषण और निदान और उसकी गति पर विचार करने के उपरान्त ही सामुदायिक परिस्थिति की परिभाषा की जा सकती है। परिस्थिति की परिभाषा का अर्थ यह निश्चित करना होता है कि सामुदाय के लिए क्या वांछित है और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्तियो, संस्थाओं एवं संगठनो का मत ज्ञात किया जाये और फिर इन सब मतो और तथ्यो को सामने रखकर परिस्थिति की पुनः परिभाषित की जाये।

4. **औपचारिक संगठन**– समुदाय के संगठन का प्रकार समुदाय के आकार और वर्तमान संगठनो की जटिलता पर निर्भर करता है। बड़े समुदायों में जहाँ संगठनो की संख्या अधिक होती है जो संगठन बनता है वह समन्वयात्मक रुप रखता है और उसका उद्देश्य वर्तमान सदस्य संगठनों का सहयोग प्राप्त करना और उन्हें समन्वित करना होता है। जैसे– कम्युनिटी काउन्सिल आदि।

5. **सर्वेक्षण**– औपचारिक संगठन कें निर्माण के पश्चात् सामुदायिक दशाओं के सर्वेक्षण की आवश्यकता होती है, सर्वेक्षण का उद्देश्य तथ्यों को ज्ञात करना है। उच्चतर यह है कि आरम्भ में एक या दो समस्याओं पर ध्यान केद्रित किया जाये और उन समस्याओं को सुलझाने के लिए तथ्य सर्वेक्षण द्वारा एकत्र किये जायें।

6. **कार्यक्रम–** कार्यक्रम के निर्माण के समय सर्वप्रथम यह देखना पड़ता है कि कौन सी आवश्यकताएँ ऐसी हैं जिनको पूरा करने में सदस्यों की अधिक रुचि है और जिनकी संतुष्टि में न्यूनतम संघर्ष की सम्भावना है। सबसे पहले इस प्रकार के कार्यक्रम के चयन की आवश्यकता होती है। जब समुदाय का कुछ संगठन हो जाता है तो फिर पूरे वर्ष के लिए एक निश्चित कार्यक्रम बनाया जा सकता है। इसके बाद प्रत्येक योजना के लिए विशेष उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं। कार्यक्रम बनाने में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि समुदाय के सभी सदस्यो एवं समूहो को योजनाओं के मत प्रकट करने और विचार विमर्श करने की पूरी सुविधा दी जाये।

सामुदायिक संगठन से जागरुकता



सामुदायिक व्यावसायिक कार्यकर्ता की भूमिका

संगठन में रॉस ने व्यावसायिक कार्यकर्ता की चार प्रमुख भूमिकायें बतायी हैं–

1. एक पथ प्रदर्शक के रुप में।
2. एक सामर्थ्यदाता के रुप में।
3. एक विशेषज्ञ के रुप में।
4. एक चिकित्सक के रुप से।

1. **पथ प्रदर्शक** – कार्यकर्ता एक सामुदायिक पथ प्रदर्शक के रुप में कार्य करता है। वह समुदाय की सहायता करता है कि वह अपने उद्देश्यों को निश्चित कर सके और उनकी प्राप्ति के साधनों का पता लगा सके। समुदाय को किस दिशा में जाना है यह स्वयं

समुदाय को निर्णय करना होता है। परन्तु कार्यकर्ता अपने अनुभव के आधार पर समुदाय को रास्ते की ऊँच–नीच से सचेत करता है। वह अन्य सुझाव दे सकता है और समुदाय को निर्णय करने के लिए आवश्यक सूचना प्रदान कर सकता है, परन्तु वह स्वयं किसी सुझाव को मानने के लिए समुदाय को बाध्य नहीं करता। वह सदैव इस बात का प्रयास करता है कि समुदाय स्वयं निर्णय करे।

2. **सामर्थ्यदाता**– कार्यकर्ता सामुदायिक संगठन प्रक्रिया को सुगम बनाता है। वह सामुदायिक दशाओं के विषय में असन्तुष्टी उत्पन्न करता है। धीरे–धीरे वह उन समस्याओं पर समुदाय का ध्यान केन्द्रित करता है जिनसे समुदाय के अधिकतर व्यक्ति सम्बन्धित होते हैं। जब कुछ समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है तो वह विभिन्न समूहों को विचार–विमर्श के लिए एकत्र करता है। वह सामान्य उद्‌देश्यों पर बल देता है। जिन बातों के विषय में घोर मतभेद होता है उनका स्पष्टीकरण करता है और समुदाय के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करता है। वह समुदाय में संगठन एवं क्रिया का उत्तरदायित्व नहीं लेता परन्तु जो लोग इसका उत्तरदायित्व लेते हैं उन्हें उत्साह एवं सहयोग अवश्य देता है।

3. **विशेषज्ञ**– एक विशेषज्ञ के रुप में वह समुदाय को सूचना प्रावैधिक अनुभव, प्रणालियों के विषय में परामर्श आदि उपलब्ध कराता है परन्तु वह स्वयं अपना मत समुदाय से मनवाने का प्रयास नहीं करता। इस बात में उसे अपनी आत्मचेतना पर नियन्त्रण रखना पड़ता है। वह सामुदायिक निदान से समुदाय को सचेत करता है, और अनुसंधान की प्रणालियों द्वारा समुदाय को लाभ पहुंचाता है। वह सामुदायिक कार्यक्रम का मूल्यांकन भी करता है और समुदाय के उद्‌देश्यों के प्रकाश में उन्हें समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

4. **चिकित्सक**– चिकित्सा का अर्थ है सामुदायिक चिकित्सा। कार्यकर्ता उन सामाजिक शक्तियों का पता लगाता है जो समुदाय को विघटित करती हैं और संघर्ष उत्पन्न करती हैं। एक सामुदायिक चिकित्सक के रुप में वह समुदाय को यह बताता है कि किस प्रकार वह संघर्ष का निवारण करे और किस प्रकार समुदाय में एकता और अनुरुपता उत्पन्न करे। वह समुदाय में आत्मचेतना और आत्म विश्लेषण उत्पन्न करके संघर्ष का निवारण और एकीकरण को प्रोत्साहित करता है।

इस प्रकार हम देखतें है कि कार्यकर्ता यह चाहता है कि समुदाय अपना कार्यक्रम स्वयं बनाये, स्वयं निर्णय करे और अपने साधनों को स्वयं गतिमान करे। वह केवल एक व्यावसायिक सहायक के रुप में कार्य करता है और समुदाय में आत्मनिर्भरता और आत्मनिर्देशन का विकास करना चाहता है। वह समुदाय का नेतृत्व नहीं करता परन्तु समुदाय के सदस्यों में नेतृत्व की

योग्यता उत्पन्न करता है। उसकी सफलता इसी में है कि समुदाय को उसकी कम से कम आवश्यकता का अनुभव हो।

1.3.4 समाज कार्य की द्वितीयक पद्धतियाँ (Secondary Methods of Social work)

समाज कल्याण प्रशासन (Social Welfare Administration)

समाज कल्याण प्रशासन समाज कार्य की एक द्वितियक प्रणाली है। इस प्रणाली के अभ्यास का आधार सामान्य रुप से प्रशासन के सिद्धान्तों एवं प्रविधियों पर है। विशेष प्रकार से इसका आधार सार्वजनिक प्रशासन के सिद्धान्तों एवं प्रविधियों पर है। परन्तु समाज कल्याण प्रशासन का सम्बन्ध समाज कार्य के उस उद्देश्य से है जिसका सम्बन्ध मानवीय समस्याओं को सुलझाने और मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति से है। सामाजिक सेवाओं का प्रमुख उद्देश्य मनुष्यों की सहायता करना है। यही उद्देश्य समाज कल्याण प्रशासन को सार्वजनिक प्रशासन एवं व्यापारिक प्रशासन से भिन्न करता है क्योंकि वे प्रत्यक्ष रुप से मनुष्यों से सम्बन्धित नहीं हैं।

प्रत्येक सामाजिक संस्था का उद्देश्य सेवार्थियों को किसी न किसी प्रकार की प्रत्यक्ष सेवा प्रदान करना या दूसरी संस्थाओं या जनता को सामुदायिक संगठन की सेवा प्रदान करना है। यह सेवा सम्बन्धित क्रियायें संस्था के कन्द्रीय कार्य हैं। इन प्रत्यक्ष सेवा सम्बन्धी क्रियाओं को वांक्षित रुप से सम्पादित करने के लिए आवश्यक है कि बहुत सी ऐसी सहारा देनी वाली या सुविधाजनक क्रियायें सम्पादित की जायें जो स्वयं प्रत्यक्ष सेवा नहीं है परन्तु जो प्रत्यक्ष सेवाओं के प्रदान करने के लिए अनिवार्य हैं और उन सेवाओं के साथ–साथ सम्पादित होती रहती हैं। ऐसी प्रशासकीय क्रियाओं में अनेक क्रियायें सम्मिलित हैं, जैसे कार्य एवं नीतियां निर्धारित करना, सामान्य नियोजन, अधिशाषी नेतृत्व एवं नित्यकर्म का व्यावसायिक निरीक्षण।

समाज कल्याण प्रशासन की परिभाषा–

Arthur Dunham के अनुसार समाज कल्याण प्रशासन का अर्थ है, वह सहारा देने वाली और सुविधाजनक क्रियायें जो किसी सामाजिक संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक है और जिनका सम्पादन सामाजिक सेवाओं के सम्पादन के साथ–साथ होता रहता है।

John Kidneigh के अनुसार सामाजिक प्रशासन सामाजिक नीति को सामाजिक सेवाओं का रुप देने की एक प्रक्रिया है।

Friedlander के अनुसार, "सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन सामाजिक विधान की धाराओं और निजी परोपकारिता एवं धार्मिक दान पद्धति के लक्ष्यों को मानवता के लिए सेवाओं एवं लाभ का

रुप प्रदान करता है।" सामाजिक संस्थाओं के प्रबन्ध का उद्देश्य लोगों के उच्चतम रुप से सहायता करना है। संक्षिप्त रुप से इसे मानवीय सम्बन्धों की क्लास कहा गया है।

समाज कल्याण प्रशासन के कार्य–

Luther Gullick के अनुसार समाज कल्याण प्रशासन के निम्नलिखित कार्य हैं :

1. **नियोजन(Planing)**– नियोजन का अर्थ है सामाजिक संस्था की भावी रचना एवं कार्य संचालन के विषय में विचार करना। नियोजन द्वारा संस्था के उद्देश्यों, कार्यो एवं नीतियों को निश्चित एवं स्पष्ट किया जाता है।

   संस्था के उद्देश्य उसके अति समीप एवं दीर्घकालीन लक्ष्य है, संचालन सम्बन्धी कार्य वह विधियां हैं जिनके अनुसार संस्था अपनी उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करती है, नीतियाँ वे सामान्य नियम हैं जो संस्था के कार्यो को निश्चित करते हैं संस्था की विभिन्न सेवायें उसके कार्यक्रम का निर्माण करती है। प्रशासन भी संस्था के कार्यक्रम का मार्ग प्रर्दशन करता है।

2. **संगठन (Organizing)** इसके द्वारा संस्था के प्रशासन सम्बन्धी ढाँचे का निर्माण होता है और अन्तिम नियन्त्रण समूह, प्रबन्ध परिषद, कार्यकारणी एवं कर्मचारियों के कार्यो को निश्चित किया जाता है।

3. **कर्मचारी गण व्यवस्था (Staffing)**– कर्मचारीगण प्रशासन का अर्थ है भर्ती, सेवायुक्ति पदावधि, वेतन, अवकाश एवं कार्य सम्बन्धी दशाओं के विषय में संस्था के कर्मचारीगण द्वारा नीतियों को व्यावहारिक रुप देना।

   कर्मचारीगण प्रशासन के अर्न्तगत कर्मचारियों के कार्य सम्पादन का मूल्यांकन भी है जिससे कार्यक्षमता एवं न्यायपूर्ण व्यवहार को प्रलोभन मिले।

   कर्मचारीगण व्यवहारो में सेवाकालीन प्रशिक्षण, अभियोग सम्बन्धी कार्यरीति, निवृत्ति के नियम, कर्मचारियो की पदच्युति और निरीक्षण सम्मिलित है।

4. **निर्देशन (Direction)**– यह अधिशासक का कार्य है। अन्तिम निर्णय और संस्था की प्रशासन सम्बन्धी प्रक्रिया के निरीक्षण का उत्तरदायित्व निर्देशक पर होता है। इसके लिए एक रचनात्मक नेतृत्व की आवश्यकता है जो कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त कर सके। संस्था की नियमानुसार क्रियाएं निर्देशक या उसके सहायकों के निर्देशन में चलती रहती हैं।

5. **समन्वय (Coordination)**– समन्वय का अर्थ यह है कि प्रत्येक कर्मचारी के कर्त्तव्य स्पष्ट रुप से निश्चित हो और उत्तरदायित्व एवं अधिकार का निश्चित रुप से वितरण हो।

कर्मचारियों के एक–दूसरे से और संस्था से सम्बन्ध स्पष्ट होने चाहिए। अधिशासक को चाहिए कि वह सेवाओं को क्षमताशाली बनाने और कर्मचारियों की सहायता से समुदाय से सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास में भाग ले।

6. **प्रतिवेदन** (Reporting)– यह ऐसा प्रशासकीय कार्य है जिसके द्वारा संस्था के कार्यो का प्रतिवेदन प्रबन्ध परिषद, संस्था के सदस्यों, और जनता की सेवा में समर्पित किया जाता है। इसके लिए अभिलेखन एवं लेखांकन की एक पद्धति की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इसके लिए सांख्यकीय शोध की भी आवश्यकता है। जनता की सेवा में प्रतिवेदन संदेशवाहन के सामान्य साधनो द्वारा भी समर्पित किया जाता है और इस प्रकार जनता के लिए संस्था के कार्यो की व्याख्या की जाती है और जनता से सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं।

7. **आय–व्यय की व्यवस्था (Budgeting)**– इसमें संस्था के आर्थिक साधनों को गतिमान करना, व्यय करना और उनका नियंत्रण, सम्मिलित है। सरकारी संस्थाएँ कोष की प्राप्ति के लिए राजकीय, केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारो से सम्पर्क स्थापित करती है।

8. **अभिलेखन एवं लेखांकन** (Records and Accountancy)– प्रत्येक संस्था के लिए, चाहे वह निजी हो या सरकारी, आवश्यक है कि वह अपनी क्रियाओं एवं कार्यो का अभिलेख रखे और अपने आय–व्यय का लेखांकन रखे। यह अभिलेख और लेखांकन प्रबन्धक समिति या परिषद या विधान सभा के सम्मुख रखा जाता है। इसके आधार पर संस्था की सामाजिक नीति में परिवर्तन किये जा सकते हैं।

9. **आर्थिक साधनों की उपलब्धि** (Availability of Economic Resources)– संस्था के आर्थिक साधनों की उपलब्धि का आधार संस्था की रचना और प्रकार पर निर्भर करता है। सरकारी संस्थायें इसके लिए केन्द्रीय, राजकीय या स्थानीय सरकारों से सम्पर्क स्थापित करती है। निजी संस्थायें धन एकत्र करने के लिए दान के आन्दोलनों या सामुदायिक कोर्स (Community Chest) पर आधारित होती है। अंकेक्षण के माध्यम से इनके आय–व्ययक पर नियन्त्रण किया जाता है जिससे धन सावधानी से और संस्था की नीतियों और नियमों के अनुसार व्यय किया जाये। संस्था की विभिन्न शाखाओं एवं विभागों में धन का वितरण किया जाता है जिससे वह सब कार्य क्षमता के साथ कार्य कर सके।

भारत में समाज सेवी संस्थाओं के प्रशासन की समस्याएँ

भारत में दो प्रकार की समाज सेवी संस्थाएँ पायी जाती हैं: निजी एवं राजकीय। राजकीय संस्थाओं का प्रशासन राजकीय कर्मचारी चलाते हैं और निजी संस्थाओं का प्रशासन गैरशासकीय कर्मचारियों का उत्तरदायित्व है।

भारत में निजी संस्थाए एक बडी संख्या में पायी जाती हैं परन्तु उनकी सेवाओं और कर्मचारीगण प्रशासन का स्तर अभी बड़ा असंतोषजनक है। इसके अनेक कारण है :–

1. **नियोजन का अभाव**– अधिकतर संस्थाओं में नियोजन का अभाव है या तो नीतिया स्पष्ट नही हैं या उनका आधार वैज्ञानिक नही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकतर संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त कर्मचारियों का अभाव है। अधिकतर संस्थाओं का संचालन वे लोग करते हैं जिन्हे समाज कार्य एवं सामाजिक प्रशासन का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

2. **संगठन संबंधी त्रुटियाँ**– अधिकतर संस्थाओं में अन्तिम नियंत्रण समूह, प्रबन्ध परिषद, कार्यकरणी और कर्मचारियों के कार्य एवं उत्तरदायित्व स्पष्ट रुप से निश्चित नही है। अधिकतर संस्थाए निजी और अनियंत्रित रुप से कार्य करती है और उनके प्रबन्ध परिषद में स्वार्थी लोग भरे हुए है जो अपने निजी हितों कों सार्वजनिक हितों पर प्रधानता देते हैं।

3. **कार्मिक प्रशासन**– भारत के अधिकतर संस्थाओं में कार्मिक प्रशासन का अभाव है। अधिकतर अधिकारी कार्मिक प्रशासन के सिद्धान्तों और कर्मचारियों के व्यवहारों के विषय में कोई ज्ञान नही रखते। कर्मचारियों की भर्ती, चयन, पदस्थापना, वेतन, अवकाश, पदोन्नति आदि के बारे में उचित नियमों का पालन नही होता।

4. **रचनात्मक नेतृत्व का अभाव**– ऐसे निर्देशकों का अभाव है जो कर्मचारियों में सहयोग स्थापित कर सके और जो अन्तिम निर्णय और संस्था की प्रशासन सम्बन्धी प्रक्रियांओं का निरीक्षण कर सके।

5. **समन्वय**– अधिकतर संस्थाओं में आन्तरिक एवं बाहरी समन्वय का अभाव है। कर्मचारियों के कर्तव्य स्पष्ट रुप से निश्चित नही है और अधिकार का विभाजन भी निश्चित एवं स्पष्ट रुप से नहीं है।

   इसके अतिरिक्त एक ही क्षेत्र में कार्य करने वाली अनेक संस्थाओं में परस्पर सहयोग और समन्वय का अभाव है। कहीं–कहीं एक ही क्षेत्र में अनेक संस्थाए एक ही प्रकार का कार्य करती है जबकि अन्य क्षेत्रों में संस्थाओं का अभाव है। संस्थाओं में सहयोग होने की अपेक्षा उनमें ईर्ष्या एवं प्रतिस्पर्धा की भावना पायी जाती है।

6. **अभिलेखीकरण**– प्रतिवेदन संग्रह का कोई उचित प्रबन्ध नही होता है। अभिलेखन एवं लेखांकन का अभाव है। शोधकार्य एवं सांख्यकीय सूचनाओं की भी भारी कमी है, जहाँ

तक आय–व्यय के बीच का सम्बन्ध है। यह कहा जा सकता है कि आर्थिक अभिलेख का प्रबन्ध न होने के कारण आय–व्यय का प्रबन्ध असन्तोषजनक रहता है।

समाज कार्य शोध (Social Work Research)

समाज कार्य शोध भी समाज कार्य की एक प्रणाली है। समाज कार्य शोध की परिभाषा करने के पहले आवश्यक है कि सामाजिक शोध और समाज कार्य शोध के अन्तर को स्पष्ट कर दिया जाए।

सामाजिक शोध (सोशल रिसर्च) एक व्यापक शब्द है जिसका सम्बन्ध समाज के किसी भी पहलू से हो सकता है। यह समाज कार्य शोध की अपेक्षा एक विस्तृत शब्द है।

सन् 1948 में समाज कार्य अनुसंधान कार्यशाला (Workshop on research in Social Work) ने समाज कार्य शोध और सामाजिक शोध का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा : "सामाजिक शोध का उद्‌देश्य किसी भी मौलिक समाज विज्ञान का विकास है। समाज कार्य शोध का सम्बन्ध उन समस्याओं से है जिनका सामना व्यवसायिक समाज कार्यकर्ताओं और समुदाय को समाज कार्य की सेवाओं के सम्बन्ध में करना पड़ता है। समाज कार्य शोध में जिस समस्या पर ध्यान दिया जाता है वह समाज कार्य की सेवाए प्रदान करते समय या उसका नियोजन करते समय उत्पन्न होती हैं। इस प्रक्रिया में सामाजिक शोध की प्रणालियों और सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु समाज कार्यकर्ताओं के लिए उनकी उपयोगिता उसी समय है जब वह समाज कार्य अभ्यास से उत्पन्न होने वाले प्रश्नों का उत्तर देने में सहायक हों।"

अतः समाजकार्य शोध का उद्‌देश्य यह होना चाहिए कि ऐसे ज्ञान को अर्जित एवं विकसित किया जाए जो समाजकार्य के लिए उपयोगी हो। अर्थात् जिससे समाज कार्य अभ्यास के लिए एक ठोस आधार प्राप्त हो सके और जिसके आधार पर समाज कार्य के लक्ष्यों, प्रणालियों का स्पष्टीकरण किया जा सके।

समाजकार्य शोध के उद्‌देश्य

राल्फ सी. फ्लेचर ने समाजकार्य शोध के उद्‌देश्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित क्षेत्रों की ओर संकेत किया हैः–

1. समाजकार्य के अभ्यास में प्रयोग किये जाने वाले निदान एवं चिकित्सा की प्रविधियों की उन्नति और विकास करना।
2. समाजकार्य संस्थाओं की दक्षता को विकसित करना और उनके कार्यो की परिभाषा
3. एक ऐसे माध्यम के रुप में करना जिसके द्वारा समाज कार्य अभ्यास किया जाता है।

4. समुदाय में समाजकार्य सेवाओं की आवश्यकता का मापन एवं मूल्यांकन।

5. सामाजिक विचलन की हैतुकी के विषय में सामान्य ज्ञान में वृद्धि करना।

समाजकार्य शोध के चरण (Steps of Social Work)

मार्ग्रेट ब्लैंकर के अनुसार समाजकार्य शोध की योजना के निम्नलिखित चरण हो सकते हैं :

1. **विषय का चुनाव**– समाजिक समस्या की परिभाषा एवं स्वरुपीकरण व्यक्तियों, समूहों एवं समुदाय के साथ समाज कार्य अभ्यास के अनुभव एवं तथ्यों के आधार पर किया जाता है। शोध योजना का उद्देश्य या तो सामाजिक सिद्धान्तों के द्वारा किसी समस्या का स्पष्टीकरण करना होता है या चयनित समस्या के विभिन्न पहलुओं को एक व्यवस्थित रुप देना होता है।

2. **उपकल्पनाओं (Hypotheses) का निर्माण**– इसका उद्देश्य निर्वाचित समस्या का स्पष्टीकरण एवं समाधान होता है।

3. **शोध रुपांकन (Research Design) का निर्माण**– इसका उद्देश्य उपकल्पनाओं की वैधता की जांच करना होता है।

4. **तथ्य–संकलन प्रक्रिया (Data Collection Process)**– इसमें निरीक्षण, साक्षात्कार, एवं अन्वेषण सम्मिलित हैं। इनका उद्देश्य उन तथ्यों एवं सूचनाओं को प्राप्त करना है जिनकी उप कल्पनाओं और शोध रुपांकन के लिए आवश्यकता हो।

5. **तथ्य–विश्लेषण प्रक्रिया (Data Analysis Process)**– संकतिल तथ्यों एवं सूचनाओं का विश्लेषण जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे उपकल्पनाओं की तर्कानुसार पुष्टि करते हैं।

6. **शोध परिणामों एवं निष्कर्षों की व्याख्या एवं मूल्याकंन (Result, Discussion and Evaluation)**– शोध परिणामों एवं निष्कर्षों की व्याख्या एवं मूल्याकंन जिससे यह निश्चित किया जा सके कि शोध परिणाम समस्या का सतर्क उत्तर उपलब्ध करते हैं या वे भावी शोध अध्ययनों का आधार बनाये जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य समाज कार्य व्यक्तियों या समूहों के चिकित्सात्मक निरीक्षण पर किये जाते हैं या समाज कार्य के दर्शन, संगठन, एवं अभ्यास के ऐतिहासिक पहलुओं पर किये जाते हैं।

सामाजिक क्रिया (Social Action)

सामाजिक क्रिया समाज–कार्य की एक सहायक पद्धति है। जब समाज में व्यापक स्तर पर किसी सामाजिक परिवर्तन की चेष्टा की जाती है तो उसे सामाजिक क्रिया के रूप में जाना जाता

है। सामाजिक क्रिया के लिए यह आवश्यक है कि इसमें एक बड़ा समूह या समुदाय सचेष्ट हो। समूह अथवा समुदाय की सचेष्टता अच्छी प्रकार पूर्व नियोजित, सुसंगठित और निरूपित होने से इसकी सफलता की अधिक अच्छी स्थिति होती है। जो भी व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय सामाजिक क्रिया में संलग्न हों उनके लिए यह जरूरी है कि वे सामाजिक प्रगति और परिवर्तन की आकांक्षा रखते हों तथा उन्हें इसमें दृढ़ आस्था हो।

कोई भी सामाजिक क्रिया ऐसे नहीं नियोजित की जानी चाहिए कि वह सम्बन्धित शासन के विधान--संविधान के प्रतिकूल हों तथा उससे संभावित परिवर्तन की संभावना ही न हो; अर्थात् सामाजिक क्रिया का नियोजन करते समय अपने राज्य के विधान--संविधान की मान्यताओं और उसके अन्तर्गत प्रदत्त अधिकारों इत्यादि को अच्छी प्रकार समझ लिया जाना चाहिए। सामाजिक क्रिया के पीछे निहित ऐसी ताकत होनी चाहिए जिसका कि एहसास या जिसकी कि इच्छा उन सभी व्यक्तियों को हो जो कि उससे सम्बन्धित हैं।

सामाजिक क्रिया का नियोजन या उसकी कल्पना करते समय यह बड़ा ही उपयोगी होता है कि समाज की तमाम भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक तथा राजनीतिक स्थितियों और संभावनाओं को भली प्रकार समझ लिया जाय। इन स्थितियों या संभावनाओं को समझते समय इनके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, तात्कालिक तथा दूरगामी प्रभावों को भी समझा जाना चाहिए। इनके समुचित ज्ञानोपरान्त ही सामाजिक क्रिया हेतु आवश्यक समस्या का चुनाव एवं उसके निराकरण की संभावनाओं का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

कभी भी सामाजिक क्रिया के पूर्व किया जाने वाला उससे सम्बन्धित यह अध्ययन तभी उत्तम और पूर्ण हो सकता है जब कि हम उससे सम्बन्धित तमाम अभिलेखों एवं अन्य साहित्यों का भली--भाँति अध्ययन करें। ये साहित्य सरकारी दफ्तरों, पुस्तकालयों, अभिकरणों एवं कतिपय व्यक्तियों के पास से प्राप्त हो सकते हैं। समाचार--पत्र, पत्रिकाएँ, चलचित्र इत्यादि से भी ऐसे सन्दर्भ का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और इनकी भी मदद लेनी चाहिए। बहुत बार व्यक्तिगत अनुभव और परिस्थितियों के स्वयं के अवलोकन के माध्यम से या व्यक्तियों के शिकवे--शिकायतों या सर्वेक्षण और शोध इत्यादि के माध्यम से भी इनका ज्ञान प्राप्त होता है।

सामाजिक क्रिया का लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकता है, जब सम्बन्धित समूह या समुदाय के व्यक्तियों में समस्या के तादात्मीकरण और कार्यक्रमों के निर्माण में स्वयं की भागीदारी हो। ऐसा होना समाज--कार्य के मूल सिद्धान्तों के अनुसार आवश्यक है। जो व्यक्ति अथवा समूह सामाजिक क्रिया में लगें हैं उन्हें ऐसे निर्देशन और ज्ञान की सुविधा मुहैया की जानी चाहिए जो कि उन्हें उनके कर्त्तव्यों की ओर उत्प्रेरित करें और समय--समय पर आने वाली कठिनाइयों का सामना करने में सक्षम बनाये रखें। उन्हें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि उनकी उपलब्धियों का स्वरूप क्या होगा।

सामाजिक क्रिया की गति उसमें लगे नेतृत्व से बहुत कुछ सम्बन्धित होती है। यदि नेतृत्व समझदार, आस्थावान्, धैर्यवान् तथा विचार और विवेक से युक्त है तो सफलता निश्चित होती है। सामाजिक क्रिया का आन्दोलन मानवीय भावनाओं के बीच से गुजरने वाला आन्दोलन है इसलिए उसके संचालन के प्रमुख कर्त्ता में ये गुण होने ही चाहिए। प्रायः उनकी मानवीय कठिनाइयाँ ऐसे आन्दोलनों में बाधा स्वरूप उपस्थित हो जाया करती हैं। उनका सफल निराकरण तभी हो सकता है, जबकि नेतृत्व सक्षम और कुशल हो। सामाजिक आन्दोलनों या सामाजिक क्रिया के दरम्यान चूँकि एक बड़ा सामाजिक समूह संलग्न होता है इसलिए इस बात की काफी संभावना होती है कि उसके अन्तर्गत भिन्न–भिन्न शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक स्थिति के व्यक्ति सम्मिलित हों और उनकी भावनाएँ या कार्यक्षमता भी भिन्न–भिन्न हों। बहुत बार यह भिन्नता इस हद तक होती है कि विचारों या कर्त्तव्यों में आपसी प्रतिकूलता भी पैदा हो जाती है। इस प्रतिकूलता से सामाजिक क्रिया की गति अवरुद्ध होती है और इस हेतु इसके बारे में सतर्क रहना चाहिए। सभी प्रकार के व्यक्तियों को समय–समय पर आवश्यक निरीक्षण और निर्देशन से बाँध कर उनको कर्त्तव्यनिष्ठ बनाये रखना चाहिए। जो भी लोग सामाजिक क्रिया में संलग्न हों उन सबको सावधानीपूर्वक और सतत् समझदारी से काम लेना चाहिए तथा अपने कार्य के दौरान उन्हें यह हमेशा ही ध्यान रखना चाहिए कि उनके कार्य सामाजिक और वैयक्तिक न्याय पर आधारित हों। ऐसा नहीं कि उनके कर्त्तव्य के जो परिणाम हों उनसे वैयक्तिक अथवा सामाजिक तौर पर कोई विभेदीकरण या अन्याय की बात बढ़े।

समाज कार्य की यह सहायक पद्धति समाज–कार्य के दर्शन और सिद्धान्तों द्वारा मान्यता प्राप्त जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना एवं विकास हेतु प्रयोग में लायी जाती है। आज के समाज में ऊँच–नीच, पिछड़े और विकसित तथा स्त्री और पुरुष के आधार पर जो भेद हैं, उनको मिटाना जनतांत्रिक कार्य है। हरिजन और अनुसूचित जाति, आदिम जाति, श्रमिक, महिला, अशिक्षित, कृषक, विधवा, वेश्या इत्यादि ऐसे वर्ग हैं जिनका कि समाज में सामान्य समायोजन होना चाहिए। सवर्णों या धनिकों में अछूतों या गरीबों के प्रति हेय भावना है जो कि दूर होनी चाहिए। शासन यंत्र और पद्धति के ऐसे अनेक दोष हैं जिनसे कि कुछ अत्यन्त साधारण स्थिति के व्यक्ति अपनी आवाज या प्रार्थना इच्छित मंजिल तक नहीं पहुंचा पाते।

देश के एक बड़े तबके में अशिक्षा है, और जीवन–यापन के लिए आवश्यक न्यूनतम साधनों की भी कमी है। इन सब सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए बहुत से प्रयत्न किये जाते रहे हैं और किये जा रहे हैं। ये प्रयत्न सरकारी और गैर–सरकारी दोनों ही धरातलों पर हैं। इन प्रयत्नों के बावजूद उपरोक्त सामाजिक समस्यायें आज भी अत्यधिक व्यापक हैं।

वर्तमान औद्योगिक युग में ऐसी वैयक्तिक या पारिवारिक मूल्यगत समस्यायें भी उपस्थित होती जा रही हैं जो कि औद्योगीकरण की देन हैं। इन सभी समस्याओं को कानूनों द्वारा या जनचेतना द्वारा काफी हद तक दूर करने की कोशिश की जा सकती है। आज का युग जनतांत्रिक युग कहा जाता है। सामाजिक न्याय, समानता और स्वतंत्रता राज्य और समाज के दायित्व हैं।

समय की इस चुनौती का सामना तभी हो सकता है जब कि सामाजिक पैमाने पर इन मूल्यों की स्थापना की चेष्टा की जाय। कोई भी सामाजिक कार्यकर्ता इस कार्य को सामाजिक क्रिया के माध्यम से ही कर सकता है। सामाजिक क्रिया की पद्धति का उपयोग कर समाजगत इस परिवर्तन की अपेक्षा को पूरा करना चाहिए।

जब राजकीय कानूनों के स्वरूप को मानवीय दृष्टिकोण से ओतप्रोत और परिवर्तित करने की आवश्यकता महसूस की जाती है और इस हेतु सामाजिक क्रिया का आलम्बन किया जाता है तो सामाजिक कार्यकर्ता, सामाजिक अभिकरण या इनके बड़े–बड़े संगठन इस हेतु आवाज उठाते हैं। जब ऐसी आवाजें उठानी होती हैं तो इसके लिए उनसे संबन्धित स्थितियों का अच्छी प्रकार अध्ययन और चिन्तन करते हैं। अपना दृष्टिकोण और कार्यक्रम निश्चित कर लेने के उपरान्त वे शासन के पदाधिकारियों, विधानसभा या लोकसभा के सदस्यों और संबंधित क्षेत्रों के विशेषज्ञों के सम्पर्क करते हैं। यह सम्पर्क पत्राचार, प्रत्यक्ष वार्ता तथा समाचार पत्रों में वक्तव्यों के माध्यम से हो सकता है। ये कार्य अलग–अलग भी किये जा सकते हैं और संयुक्त रूप से भी।

कभी–कभी उचित अधिकारियों के पास अपने प्रतिनिधि–मण्डल को भेज कर भी ऐसा किया जा सकता है। अभिकरण या सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक जरूरतों से अभिप्रेरित इन कार्यों में समाज के उस वर्ग और व्यक्तियों को भी सम्मिलित करते हैं जिन पर कि इसका प्रभाव होता है। चारों ओर से विशेष सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता और उसकी आवाज उठने पर ही यह ज्यादा सम्भव होता है। आज हमारे देश में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना होनी शुरू हो गयी है और इसको अधिक से अधिक व्यापक स्तर पर स्थापित करना है। इसके लिए व्यापक स्तर पर इन मूल्यों की आवश्यकताओं का सामना है और ऐसी जनजागृति और जनचेतना को बढ़ाना है जिससे कि व्यापक जनसमुदाय इन्हें आत्मसात कर सके। जब ऐसे मूल्यों को व्यापक पैमाने पर व्यक्तियों और समुदायों को ग्रहण या आत्मसात करना या कराया जाना होता है तो इसके लिए सामाजिक क्रिया की मदद बहुत ही उपयोगी होती है। जनजागृति या जनचेतना द्वारा मूल्यगत, सामाजिक परिवर्तनों की अभिलाषा की तृप्ति हेतु व्यवहृत इस सामाजिक चेष्टा या क्रिया के पूर्व सभी संभावनाओं और शक्तियों का समुचित मूल्यांकन, अनुमान और ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

समाज में अनेक व्यक्तियों और वर्गों द्वारा अनेक सामाजिक प्रक्रियाओं का एक साथ ही प्रयोग होता रहता है। जन भावना में परिवर्तन द्वारा सामाजिक मान्यताओं या मूल्यों के स्वरूप में परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि तदनुरूप जनशिक्षा के कार्यक्रम चलाये जायें। यहां जनशिक्षा का अर्थ यह है कि जो भी रूढ़िगत मूल्य या परम्परायें हों उनकी आवश्यकता और हानिकारक स्थिति का वैचारिक स्तर पर आम लोगों को एहसास कराया जाय और अपेक्षित परिवर्तन या मूल्यों अथवा मान्यता हो उसकी आवश्यकता और सम्भावना समझायी और दर्शायी जाय। ऐसा करने के लिए समुदाय या समूह के व्यक्तियों में आवश्यक प्रचार किया जाता है और समाज के भौतिक और मानवीय साधनों का उपयोग किया जाता है। ऐसा करने से सारा कार्यक्रम मालूम होता है और

जनतंत्र के लिए आवश्यक यह शर्त भी पूरी होती है कि जो भी कार्य हों वे न मात्र जनता के लिए हों, वरन जनता द्वारा भी हों।

सामाजिक कार्यकर्ता, अभिकरण या संस्थाओं को इनकी उपस्थिति और वृद्धि की चेष्टा में संलग्न होना चाहिए। जब समस्या स्वयं की अनुभूत होती है और उसके निराकरण के उपाय स्वयं ही रचे जाते हैं तो कार्य में दिलचस्पी ज्यादा स्वाभाविक तौर पर होती है। सारी सामाजिक क्रिया के दरम्यान इस बात को सदैव मद्देनजर रखना चाहिए और अपने तथा सेवार्थी जनसमुदाय के प्रयन्तों के दरम्यान ऐसी चेष्टा होनी चाहिए, जिससे कि ऐसा मालूम हो कि सारे क्रिया–कलाप जनसमुदाय के स्वयं के ही हैं।

हमने जाना

- समाज सेवा, परोपकार इत्यादि अन्य मिलते–जुलते शब्दों से समाज कार्य इसलिए अलग है क्योंकि इसमे –

  1. वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग किया जाता है।
  2. इसका स्वरूप व्यावसायिक है।

- समाज कार्य के उद्भव एवं विकास मे अनेक दार्शनिक आधारों एवं मूल्यों का योगदान है।
- समाज कार्य की पद्धतियाँ दो प्रकार की हैं–

  1. प्राथमिक पद्धतियाँ
  2. द्वितीयक पद्धतियाँ

- प्राथमिक पद्धतियों में शामिल हैं–

  1. वैयक्तिक सामाजिक कार्य (Social Case Work)
  2. समूह कार्य एवं (Group Work)
  3. सामुदायिक संगठन (Community Organization Work)

- द्वितीयक पद्धतियों में शामिल हैं–

  1. सामाजिक क्रिया (Social Action)
  2. सामाजिक कार्य अनुसंधान (Social Work Research)
  3. सामाजिक कल्याण प्रशासन (Social Welefare Administration)

- सामुदायिक नेतृत्व समाज कार्य की उपरोक्त पद्धतियों का उपयोग सामाजिक कल्याण के लिए करता है।

कठिन शब्दों के अर्थ

मूल्य	ऐसे मानदण्ड या सिद्धान्त जो समाज में लम्बे अनुभव से निर्मित होते हैं तथा उन्हे आदर्श के रूप में सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है, मूल्य कहे जाते हैं। समाज कार्य में सामाजिक कार्यकर्ता के लिए कुछ मूल्य बनाये गये हैं।
सेवार्थी	समाज का वह व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय जो समस्याग्रस्त हो और अपनी समस्या का निवारण करने के लिये इच्छा रखता हो सेवार्थी कहलाता है।
कार्यकर्ता	समाज कार्य में कार्यकर्ता से तात्पर्य है ऐसा व्यक्ति जो समाज कार्य की वैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार कार्य करने के लिये प्रशिक्षित हो और सेवार्थी की समस्या निवारण के लिये प्रस्तुत हो और वह एक पथ प्रदर्शक, सामर्थ्यदाता, विशेषज्ञ एवं चिकित्सक के रूप में सहयोग प्रदान कर रहा हो।

अभ्यास के प्रश्न

- स्वैच्छिक समाज कार्य एवं व्यावसायिक समाज कार्य क्या है
- समाज कार्य के मूल्य एवं दर्शन पर टिप्पणी करें
- समाज कार्य की प्राथमिक पद्धतियाँ कौन–कौन सी हैं
- समाज कार्य की द्वितीयक पद्धतियाँ कौन–कौन सी हैं
- समूह कार्य में नेतृत्व की आवश्यता क्यों होती है
- कार्यकर्ता–सेवार्थी मे क्या अन्तर होते हैं
- समाज कल्याण एवं सामाजिक प्रशासन को परिभाषित करें
- समाज कार्य शोध क्या है बताइए
- वैयक्तिक सेवा कार्य एवं सामूहिक सेवा कार्य के सिद्धान्तो को संक्षिप्त में लिखिए

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

1. समाज कार्य परिचय – प्रो0 राजाराम शास्त्री।
2. समाज कार्य का इतिहास एवं दर्शन – प्रो0 मिर्जा रफुद्दीन अहमद।
3. समाज कार्य – डॉ. जी. आर. मदन।
4. सामाजिक कार्य का परिचय – डॉ. धर्मपाल चौधरी।

****

1.4 समाज कार्य के क्षेत्र (Scope of Social Work)

उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

- समाज कार्य के विभिन्न क्षेत्र कौन–कौन से हैं?
- विभिन्न क्षेत्रो मे समाज कार्य कैसे किया जाता है?

आप जान चुके हैं कि समाज कार्य सबके कल्याण के लिए प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के द्वारा वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करते हुए कार्य करना है। समाज कार्य के माध्यम से व्यक्तियों या समुदायो के सदस्यों की समस्याओं की जानकारी, उनकी क्षमता एवं सम्मान की वृद्धि तथा उन्हे अपने प्रयासो से संतोषजनक एवं स्वतंत्र जीवन–यापन करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान किया जाता है। इस मॉडूल की इकाई–2 मे आपने देखा कि निम्नांकित क्षेत्रो मे समाज कार्य किया जाता है –

1. शिशु कल्याण 2. युवक कल्याण 3. महिला कल्याण 4. वृद्धावस्था

5. परिवार कल्याण 6. श्रम कल्याण 7. ग्रामीण कल्याण 8. शोधन कार्य

9. पिछडी जाति एवं आदिम जाति कल्याण 10. चिकित्सा सम्बन्धी कल्याण

11. विद्यालय सम्बन्धी समाज कार्य।

समाज कार्य का क्षेत्र यद्यपि बहुत व्यापक हैं तथा अनेक विद्वानो ने विभिन्न स्थानो की समस्याओं के अनुरूप भिन्न–भिन्न क्षेत्र बताये हैं किन्तु सुविधा के लिए उसे निम्नांकित चार प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है –

1. मानव कल्याण से सम्बन्धित क्षेत्र जैसे –बच्चों, वृद्धों, महिलाओं एवं श्रमिकों के साथ।
2. चिकित्सीय एवं मनोचिकित्सीय एवं नैदानिक क्षेत्र।
3. विद्यालयगत समाज कार्य क्षेत्र।
4. ग्रामीण, शहरी एवं जनजातीय सामुदायिक कल्याण क्षेत्र।

उपरोक्त चारो क्षेत्रो के बारे मे यहां विवेचना करने का प्रयास किया जा रहा है।

1.4.1 बच्चों, वृद्धो, महिलाओं, श्रमिकों के साथ समाज कार्य
(Social Work with Children, electrify, women and labours)

बच्चों के साथ समाज कार्य

बच्चे राष्ट्र की भावी निधि हैं। बच्चों के विकास पर ही किसी भी देश का विकास निर्भर करता है। समाज कार्य के द्वारा बच्चो के मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विकास के लिए प्रयास किया जाता है। भारत मे बच्चो के साथ किये जाने वाले समाज कार्य का विवरण इस प्रकार है :–

भारत में बाल कल्याण की स्थिति

भारत एक नव–स्वतंत्र बड़ी जनसंख्या वाला गरीब देश है। यहाँ 16 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या कुल जनसंख्या के चालीस प्रतिशत के लगभग है। देश की आर्थिक दशा तथा बच्चों की संख्या अधिक होने के कारण यहां के बाल कल्याण से सम्बन्धित कार्य अपेक्षाओं की तुलना में अति न्यून हैं। यद्यपि देश भर में विभिन्न राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्वैच्छिक संगठनों एवं सरकारी तंत्र के द्वारा इस क्षेत्र में अनेक कार्य किए जा रहे हैं फिर भी भारत में अनाथ बच्चों की समुचित कल्याणकारी व्यवस्था की कमी है। यहाँ पर बाल कल्याण के कार्यों का विस्तार शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन, वस्त्र, आवास तथा मनोरंजन आदि के क्षेत्रों में है।

भारत में बाल कल्याण से सम्बन्धित प्रमुख कार्य :–

7. शिशु एवं बाल विद्यालय
8. बाल पुस्ताकालय
9. मातृ शिशु रक्षा केन्द्र
10. दिवस–शिशु पालन गृह
11. मनोरंजन केन्द्र
12. बालक रोजगार निगम
13. अनाथाश्रम
14. मूक बधिर विद्यालय
15. विकलांग आवास समूह
16. कलात्मक अभिरूचि केन्द्र
17. बाल रोग की रोकथाम

18. गरीब बच्चों को अर्थ, वस्त्र तथा पठन–पाठन के उपकरण

19. बाल रोगियों के लिए विशेष कक्ष या विभाग तथा सुविधाएँ

20. विद्यालयों में जलपान तथा पौष्टिक आहार

21. क्रीड़ांगन एवं खेल के उपकरण

22. बाल परामर्श

23. हस्तकला एवं वृत्ति प्रशिक्षण

24. अपराधियों का व्यवहारगत समस्याओं या व्यक्तिगत अक्षमताओं से ग्रस्तों के लिए बाल–न्यायालय, परिवीक्षा अधिकारी, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कार्यकर्ता

25. मानसिक विक्षिप्तों के लिए आवासीय तथा उपचारार्थ सेवा

26. शिक्षा, स्वास्थ्य, अनैतिक व्यापार, भिक्षावृत्ति, बाल श्रमिक रोजगार, बाल श्रम के कार्य की दशाओं तथा अनुबंधों आदि से संबंधित नियम चलचित्र प्रदर्शनी एवं नाटिका इत्यादि की व्यवस्था तथा सुविधा।

अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष में भारतीय राष्ट्रीय योजना :–

संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा ने 1979 को अंतराष्ट्रीय बाल वर्ष घोषित करते हुए इसके निम्नांकित उद्देश्य बताए हैं :–

1. बालकों की समस्याओं एवं विशेष आवश्यकताओं से निर्णायकों एवं जनता को परिचित कराना,

2. बाल कल्याण के कार्यक्रम को आर्थिक और सामाजिक विकास योजना के आंतरिक अंग बनाना।

भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष मनाने के लिए एक योजना 'नेशनल प्लान ऑफ एक्शन फॉर इन्टरनेशनल इयर ऑफ दि चाइल्ड' बनाई।

इस योजना की रणनीति और उपागम यह है कि मुख्य रूप से उन बालकों के कल्याण पर जोर दिया जाए जो उपेक्षित और वंचित हैं। इनमें प्राथमिकता उन बालकों के कल्याण को प्रदान की जाएगी जो समाज के निर्बल वर्गों के बालक हैं एवं गरीब हैं। इसमें ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों की मलिन बस्तियों के बच्चों को प्राथमिकता दी जाती है। इन वर्गों में 6 वर्ष तक के बच्चों, प्राथमिक विद्यालय के बच्चों और गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली माताओं की ओर विशेष ध्यान का प्रावधान है। इस योजना के मुख्य कार्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

1. स्वास्थ्य एवं आहार में सुधार।
2. पर्यावरण स्वच्छता।
3. पीने के पानी की व्यवस्था।
4. शिक्षा, पूर्व विद्यालय, प्राथमिक एवं सामुदायिक शिक्षा व्यवस्था।
5. समाज कल्याण सेवाएं।
6. कानून निर्माण।
7. प्रचार।
8. कोष विकास।

वृद्धों के साथ समाज कार्य

वृद्धों की समस्याओं की व्यापकता, गंभीरता और जटिलता को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण समस्या है। समय के साथ–साथ जैसे–जैसे रहन–सहन के स्तर में उन्नति और सुधार हो रहा है अधिकाधिक वृद्धों के अधिक समय तक जीवित रहने की संभावना बढ़ती जा रही है। अतः दिन प्रतिदिन वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

हमारे समाज की यह परम्परा रही है कि वृद्धों के लड़के और अन्य संबंधी इनकी देखभाल करते हैं। इस परम्परावादी व्यवस्था के होते हुए भी कुछ परिवार ऐसे होते हैं जहाँ वृद्धों को पर्याप्त और आवश्यक देखभाल और सहायता नहीं मिल पाती। इसके कारण वे स्वयं दुखी हो जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप परिवार समस्याग्रस्त होने लगता है। इस परिस्थिति के कारण साधारण और सामान्य है। साधनों का अभाव मुख्य होता है। कुछ परिवार परस्पर मतभेद के कारण वृद्धों की उपेक्षा करते हैं। जब वृद्ध बीमार या बाधित होते हैं तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि परिवार आर्थिक दृष्टि से जितना अधिक संकट में होता है, उतना ही बुरा प्रभाव वृद्धों की स्थिति पर पड़ता है।

सेवाओं की व्यवस्था और प्रावधान की दृष्टि से वृद्धों की समस्या के दो पहलू हैं वे सेवाएं और कार्यक्रम जो उन वृद्धों को आयोजित किए जाएं जो अपने परिवारों में रहते हैं और वे सुविधाएँ और सेवाएं जो ऐसे वृद्धों के लिए उपलब्ध हों जो अपने परिवारों से दूर हैं या जिनके अपने परिवार नहीं हैं।

वृद्धों के उपरोक्त समस्याओं को उन्हें आवश्यक कल्याण सुविधाएँ प्रदान कर यदि समाप्त नहीं किया जा सकता तो कम अवश्य किया जा सकता है। ये सुविधाएँ हैं

- वृद्धायु पेंशन की उपयुक्त मात्रा,
- सरकारी अस्पतालों एवं औषधालयों में निःशुल्क इलाज एवं विशेष वार्डों एवं बिस्तरों की व्यवस्था,
- वृद्धों के लिए आवास की व्यवस्था
- देखभाल हेतु प्रबंध एवं अकेलेपन की उदासी दूर करने के लिए मनोरंजन सुविधाएँ,
- सामान्य शिष्टाचार एवं उनके प्रति आदर भाव प्रदर्शित करना इत्यादि।

कुछ देशों में वृद्धों को उचित सम्मान दिया जाता है तथा उनकी उचित देखभाल की जाती है। उदाहरणतया जापान में 15 सितम्बर को 'दादा दिवस' के रूप में मनाया जाता है। ताईवान ने नववर्ष नौवें चन्द्रमा मास के नौवें दिन को राष्ट्र के लिए वृद्ध जनसंख्या के प्रति सम्मान प्रकट करने वाला दिवस घोषित किया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मई का मास 'वृद्ध अमेरिकन मास' घोषित किया गया है। कनाडा में जून मास 'वरिष्ठ नागरिक' मास मनाया जाता है।

वृद्धों को प्राप्त संरक्षण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अंतर्गत देश की विभिन्न राज्य सरकारों तथा संघीय क्षेत्रों ने वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने की दृष्टि से अपने–अपने राज्यों में वृद्धावस्था पेंशन योजनाएँ प्रारंभ की हैं। वृद्ध अभिभावकों के भरण पोषण के संबंध में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में अनुच्छेद 125 (1–क) तथा हिन्दू अंगीकरण एवं भरण–पोषण अधिनियम की अनुच्छेद 20(3) में प्रावधान दिए गए हैं।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति –

सन् 1999 में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई। इस नीति का प्रमुख विषय युवाओं एवं वृद्धों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करना तथा वृद्धों की देखभाल करने के लिए परिवारों की क्षमताओं में वृद्धि के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक सहायता व्यवस्था को विकसित करना है। इस नीति में निम्नलिखित विषयों पर बल दिया गयाः

1. वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत गैर–सरकारी क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए इसके क्षेत्र को बढ़ाया गया।
2. गैर–सरकारी क्षेत्रों की सहायता से वृद्ध व्यक्तियों को छूट युक्त स्वास्थ्य संरक्षण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।
3. वरिष्ठ नागरिकों के लिए मानक कर कटौतियों को बढ़ाने की व्यवस्था की गयी।

4. पेंशन कोषों का अनुश्रवण करने के लिए नियामक प्राधिकरण के गठन का प्रस्ताव किया गया।

5. वृद्ध व्यक्तियों के लिए आवासीय ऋण प्राप्त करने को सरल बनाया गया।

6. वृद्ध व्यक्तियों को अपने बच्चों द्वारा देखभाल करने के अधिकार को उपलब्ध कराने के लिए विधान बनाने को कहा गया।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय परिषद्

केन्द्र सरकार द्वारा वृद्धों के लिए बनाई गई नीतियों तथा लाए गए कार्यक्रमों का समय–समय पर पुनरावलोकन करने के लिए इस परिषद् का गठन किया गया।

कार्य समूह का गठन

इस परिषद् के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए समूह का गठन किया गया। इस कार्य परिषद् के प्रमुख कार्य वित्तीय सुरक्षा, स्वास्थ्य संरक्षण, पोषक आहार, आश्रय, शिक्षा, जीवन और संपत्ति के संरक्षण के क्षेत्रों तथा वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति में वर्णित क्रियात्मक नीतियों से भी संबन्धित होंगे।

वृद्ध कल्याण सेवाएँ

1. वृद्ध एवं अशक्त आश्रम –

भारतवर्ष में इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास 1840 में किया गया जब बंगलौर की 'फ्रैण्ड इन नीड सोसायटी' ने वृद्धों और निसहाय व्यक्तियों के लिए सेवाएं आयोजित की। इसके बारे में डेविड सेन्सल असाइलस पूना में खोला गया जहाँ वृद्धों के लिए, भोजन, रहने और कपड़ों की व्यवस्था की गई, इसके बाद कलकत्ता, मद्रास, बंगलौर, सिकन्दराबाद, सूरत आदि में आश्रम खोला गया। इस समय देश के बड़े–बड़े नगरों में वृद्ध एवं अशक्त व्यक्तियों के लिए आश्रम खोले गए हैं जिनमें परिवार रहित अथवा परिवार से दुखी वृद्ध और अशक्त रहते हैं। इन आश्रमों में निम्नलिखित सेवाओं का प्रावधान किया जाता है:

1. वृद्धों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खाने, कपड़े, चिकित्सा तथा रहने की व्यवस्था करना।

2. वृद्धों को मनोरंजन तथा मनोविनोद की सुविधाएं, उपलब्ध कराना ताकि वे जीवन को सार्थकता के साथ व्यतीत कर सकें। व्यक्तिगत एवं संवेगात्मक समस्याओं से ग्रस्त वृद्धों को मंत्रणा तथा मनोवैज्ञानिक सहायता उपलब्ध कराना ताकि उनके जीवन में आवश्यक सामन्जस्य स्थापित हो सके।

3. वृद्धों को उपयुक्त व्यवसायों में लगाना ताकि वे कुछ आमदनी भी कर सकें।
4. वृद्धों के घरों के अन्दर धार्मिक एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों का आयोजन करना ताकि वृद्धों में सामूहिक जीवन की उपयोगिता की भावना बनी रहे।

2. वृद्धा पेंशन योजनाएँ

वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से राज्य सरकारों द्वारा ये योजनाएं चलायी गई।

पेंशन भोगी वृद्ध

संविधान की धारा 309 में व्यवस्था है कि संघ अथवा राज्यगत विषयों के प्रशासन हेतु नियुक्त कार्मिकों की सेवाशर्तों एवं भर्ती संबंधित विधान मंडल द्वारा नियमित की जा सकती है। सरकारें समय–समय पर अपने कर्मिकों की सेवा शर्तें जिसमें सेवानिवृत्ति लाभ सम्मिलित हैं, निर्धारित करने के लिए नियम एवं विनियमों का निर्माण करती रहती हैं। सेवा निवृत्ति के समय कर्मचारियों को उपलब्ध सुविधाओं में पेंशन योजना एवं अंशदायी भविष्य निधि योजना सम्मिलित हैं। सर्वोच्च न्यायालय का भी कथन है कि पेंशन कृपा की कोई वस्तु नहीं है। यह कर्मचारी का ठोस अधिकार है। पेंशन भूतकाल में दी गयी सेवाओं का भुगतान हैं एवं यह उनके लिए जिन्होंने अपने जीवन के सुन्दर दिनों में अनथक परिश्रम किया इस आश्वासन पर कि वृद्धायु में उन्हें सागर के मध्य छोड़ नहीं दिया जायेगा। सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्ति को अर्जित अवकाश के बदले नकद भुगतान, चिकित्सा भत्ता निर्धारित दरों अथवा चिकित्सा पर हुए व्यय की प्रतिपूर्ति अवकाश यात्रा सुविधा अथवा दो वर्षो में एक बार एक मास की पेंशन के बराबर राशि, चश्में का मूल्य जैसी सुविधाएं भी मिलती हैं।

वृद्धावस्था पेंशन की पात्रता

1. 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के ऐसे सभी व्यक्तियों को वृद्धावस्था पेंशन मिलती है, जिसकी मासिक आय कम हो।
2. पति–पत्नी में से केवल एक ही व्यक्ति पेंशन पाने का पात्र होता है। इसमें महिलाओं को वरीयता देने का प्रावधान है।
3. किसी अन्य स्रोत से पेंशन प्राप्त होने की दशा में इस पेंशन का लाभ नहीं मिल सकता।
4. निराश्रित व्यक्ति उसे माना जाएगा जिसकी आय का कोई साधन नहीं है तथा जिसका 20 वर्ष या उससे अधिक का पुत्र या पौत्र नहीं है।

किसान पेंशन योजना

इस योजना के अनुसार समाज कल्याण विभाग द्वारा वर्तमान समय में संचालित वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों के लिए पात्रता की जो शर्तें निर्धारित हैं वही शर्तें ग्रामीण क्षेत्र की किसान पेंशन योजना के लिए लागू होंगी। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लाभार्थी अब वृद्धावस्था पेंशन के बजाए किसान पेंशन योजना के अंतर्गत लाभान्वित होंगे।

पेंशन न्याय कोष

चतुर्थ वेतन आयोग ने यह सुझाव दिया था कि एक पेंशन न्याय कोष की स्थापना की जाए जिससे सेवानिवृत्ति पर उसकी कुल पेंशन का भुगतान किया जाए। यह कोष कम से कम 10 प्रतिशत ब्याज की गारन्टी देगा जो पेंशन भोगी मासिक भुगतान के रूप में प्राप्त करेगा। कोष का प्रबंध न्याय मंडल द्वारा किया जाएगा जिसमें ख्यातिप्राप्त एवं निवेश अनुभवी व्यक्ति रहेगें। प्रत्येक वर्ष पेंशन भोगी को निवेंशों से प्राप्त लाभ का भुगतान किया जाएगा। पेंशन भोगी की मुत्यु के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी पेंशन भोगी के खाते में जमा सम्पूर्ण धनराशि का अधिकारी होगा।

3. वृद्धायु आवास गृह

केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों, नगर पालिकाओं परोपकारी समितियों, स्वयंसेवी संगठनों एवं अन्य वरिष्ठ नागरिक कल्याण समितियों ने वृद्ध एवं बुजुर्ग नागरिकों के लिए आवासीय सुविधाओं एवं अन्य आवश्यकताओं, शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों तथा अकेलेपन को दूर करने तथा अन्य लोगों के साथ अंतः क्रिया करने एवं सम्पक्र बनाने हेतु आवासों एवं मनोरंजन स्थलों की व्यस्था की है। इसमें कुछ हैं किंग्सवे कैम्प, नयी दिल्ली सेंट–मेरी गृह आदि।

4. वृद्धों की देखभाल

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वृद्धों की देखभाल के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त की है। इस दिशा में 1962 में विएना में विश्व वृद्ध सभा का आयोजन किया गया तथा इस सभा में वृद्धों के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय कार्य योजना को भी स्वीकार किया गया। पहली अक्टूबर को प्रत्येक वर्ष विश्व वृद्ध दिवस मनाया जाता है तथा वर्ष 1999 का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष के रूप में मनाया गया था।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय–समय पर वृद्धों से संबंधित निम्नलिखित निर्देशों तथा संस्तुतियों को प्रस्तावित किया गया।

1. वृद्धों के विकास की क्षमता एवं मानवीय आवश्यकताओं के समुचित रूप से समाधान को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना की जाए तथा इसे सशक्त किया जाए।

2. वृद्धों के आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, जननांकीय एवं रोग संबंधी पक्षों पर शोध के क्षेत्र को व्यापक बनाया जाए।

3. संस्थागत अथवा सामुदायिक देखभाल प्रणाली की स्थापना की जाए अथवा उसका विस्तार किया जाए ताकि वृद्ध व्यक्तियों को समुचित स्वास्थ्य एवं सामाजिक सेवाएं उपलब्ध हो सकें।

4. वृद्धों के ऐसे संगठनों को, जो विकास कार्यक्रमों एवं नीति निर्माण में उनकी क्रियात्मक सहभागिता को सुनिश्चित करते हों, को प्रोत्साहित किया जाए।

5. नीति–निर्माताओं, अन्वेषकों एवं कार्यकताओं को वृद्ध विज्ञान में प्रशिक्षण दिया जाए ताकि उन्हें वृद्धावस्था संबंधी मामलों का समुचित ज्ञान हो सके।

महिलाओं के साथ समाज कार्य

महिला कल्याण का अर्थ

महिला कल्याण समाज कार्य का वह क्षेत्र है जिसके अंतर्गत वे सब कार्यक्रम आते हैं, जो महिलाओं की विशेष समस्याओं के निवारण, उनके पिछड़ेपन को दूर करने तथा उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर एवं स्थिति को उन्नत करने की दृष्टि से आयोजित किये जाते हैं। आर्थिक पराधीनता से स्वतंत्रता, सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन एवं पुनर्गठन महिला कार्यक्रम के मुख्य पक्ष हैं।

महिला कल्याण के उद्देश्य

महिला कल्याण के दृष्टिकोण से एवं विशेष परिस्थितियों के आधार पर महिलाओं को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। शिक्षित श्रमजीवी महिलाएं, अशिक्षित ग्रामीण महिलाएं, निम्न–आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग की महिलाएं, शिक्षित नगरीय महिलाएं, असहाय, निर्बल, शोषित, विघटित और विचलित महिलाएं इत्यादि। इन सब महिलाओं की समस्याओं की प्रकृति और विशेषताएं अलग–अलग हैं। इसलिए महिला कल्याण कार्यक्रम ऐसे व्यापक और विस्तृत होने चाहिए जो महिलाओं के सम्पूर्ण वर्ग को लाभान्वित कर सकें एवं उनमें स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता एवं सामंजस्य को विकसित करने में सहायक हों।

महिलाओं की समस्याएँ

हमारे देश में महिलाओं को आज भी विभिन्न प्रकार की असमर्थताओं का सामना करना पड़ता है। वे अब भी शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से पुरूषों से बहुत पीछे हैं। कुछ श्रेणियों में महिलाओं की स्थिति अब भी दयनीय बनी हुई है।

महिलाओं की सामान्य समस्याएँ

1. निम्न सामाजिक परिस्थिति:– भारत में स्त्रियों की स्थिति पुरूषों की तुलना में निम्न रही है। सामान्यतः उसे पुरूषों के निर्देशानुसार काम करना पड़ता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन पर निर्भर रहना पडता है। पितृसत्तात्मक परिवारों में स्त्रियों की स्थिति अब भी निम्न होती है।

अशिक्षा, निरक्षरता, आर्थिक और सामाजिक निर्भरता तथा परंपरागत प्रतिबंधों के कारण आज भी महिलाओं को समाज में वह स्थान प्राप्त नहीं है जो पुरूषों को है।

2. शिक्षा का अभाव एंव निरक्षरता की समस्या– भारत में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों के बीच शिक्षा और साक्षरता का प्रसार भी बहुत कम हुआ है। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों के बीच शिक्षा और साक्षरता में महात्वाकांक्षी कार्यक्रमों के बावजूद उनकी शैक्षिक स्थिति में संतोषजनक सुधार नहीं हो पाया है।

3. पोषाहार और स्वास्थ्य की समस्या :– सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं के अतिरिक्त महिलाओं को प्रसूति, प्रजनन एवं कुपोषण की विशेष समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। गर्भावस्था में बच्चे का स्वास्थ्य माता के स्वास्थ्य से जुड़ा होता है। देश में व्याप्त निर्धनता के कारण कई महिलाओं को समुचित पोषाहार नहीं मिल पाता। कुपोषण और समुचित चिकित्सा के अभाव में आज भी देश में बच्चे को जन्म देते समय कई महिलाओं का निधन हो जाता है। बच्चे के जन्म के बाद भी महिलाओं को विशेष देखभाल और समुचित पोषाहार की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन निर्धनता के कारण बहुत महिलाएँ ये सुविधाएँ नहीं ले पाती तथा इसका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है।

4. आर्थिक निर्भरता की समस्या :– हमारे देश में अधिकांश महिलाएँ अपने जीवन–निर्वाह के लिए पुरूषों पर आश्रित रहती हैं। परम्परा से कई श्रेणियों की महिलाओं पर घर से बाहर जाकर काम करने पर सामाजिक अंकुश लगे होते हैं। खेती तथा कुछ व्यवसायों को छोड़कर अन्य आर्थिक क्रियाकलापों में उनकी संख्या बहुत ही कम है।

निराश्रित एवं परित्यक्त महिलाओं की समस्याएं :–

हमारे देश में इधर संयुक्त परिवार प्रथा के टूटने से विधवाओं को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। विधवा–विवाह को विधि के अंतर्गत मान्यता तो दे दी गई है, लेकिन व्यवहार में विधवाओं के पुनर्विवाह को सामान्य सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पायी है। अनेक स्त्रियाँ पतियों द्वारा त्याग भी दी जाती हैं। ये अपने दाम्पत्य अधिकारों के लिए न्यायालयों की शरण भी नहीं ले पाती। और जीवन भर कष्ट सहती रहती हैं। बहुत–सी स्त्रियों को अवैध यौन संबंध या प्रसूति या

दहेज के कारण घर से निकाल दिया जाता है। साम्प्रदायिक झगड़ों, महामारी, प्राकृतिक प्रकोपों आदि के कारण भी बहुत–सी महिलाएँ आश्रयहीन हो जाती हैं।

कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ

आज भारत में महिलाएं खेतों और कुटीर उद्योगों, कारखानों, खानों अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों, कार्यालयों तथा कई प्रकार की सेवाओं में कार्यरत हैं और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। इनकी समस्याएँ निम्नलिखित हैं:

1. दोहरे काम की समस्या :–

कामकाजी महिलाओं को अपनी नौकरी से संबंद्ध कार्यों के अतिरिक्त घर के भी कामकाज देखने पड़ते हैं। फलतः उन पर काम का बोझ होता है, जिसका उनके स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. निम्न मजदूरी की समस्या :–

हमारे देश में महिलाओं को केवल कुछ चुने हुए कार्यों में ही रोजगार के अवसर मिलते हैं। जैसे–शिक्षा, परिचर्या, खेती, बागवानी, हस्तशिल्प तथा कार्यालयों से संबंद्ध कार्य। इन सीमित व्यवसायों में रोजगार की इच्छुक महिलाओं की संख्या अधिक होती है। बहुत से नियोजक प्रसूति की स्थिति में छुट्टी तथा प्रसूति हित लाभ और शिशु गृह की स्थापना से बचने के लिए महिलाओं को नियोजित नहीं करना चाहते।

3. कार्य की कठिन दशाओं की समस्या :–

महिलाओं को शारीरिक कार्यों वाले नियोजनों में उनके सामर्थ्य के अनुपात में अधिक कठिन कार्यो पर लगातार कई घण्टे तक काम करना पड़ता है। कई कारखानों में खतरनाक मशीनों या प्रक्रियाओं में भी उन्हें नियोजित किया जाता है।

4. प्रसूति से उत्पन्न समस्याएं :–

कामकाजी महिलाओं को प्रसूति की अवधि में वेतन और प्रसूति हितलाभ की आवश्यकता होती है। बहुत से नियोजक प्रसूति की अवस्था में महिला श्रमिकों को काम से हटा देते हैं और उन्हें इस अवधि में मजदूरी भी नहीं देते।

5. आवास और यातायात की समस्याएं :–

हमारे देश में बड़े–बडें नगरों में जाकर काम करने वाली महिलाओं को आवास की कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन्हें कार्यस्थल पर आने–जाने में यातायात की कठिनाइयां भी झेलनी पड़ती हैं।

6. मनोरंजन की समस्या :–

कामकाजी महिलाएँ घर और बाहर के कामों के बोझ से दबी रहती हैं। अत्यधिक काम और मनोरंजन के अभाव का उनके स्वास्थ्य और स्वभाव पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7. सामाजिक सुरक्षा की समस्या :–

सामान्यतः पुरूष कर्मचारियों की तरह महिला कर्मचारियों को भी दुर्घटना, बीमारी वृद्धावस्था तथा बेरोजगारी आदि खतरों का सामना करना पड़ता है। इन स्थितयों में उन्हें आर्थिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। सुरक्षा की समस्या, नौकरी की समस्या, पारिवारिक कार्यों में सुधार की समस्या तथा कार्यस्थल पर समायोजन की समस्या आदि कामकाजी महिलाओं की कुछ अन्य समस्याएँ हैं।

महिला कल्याण में सरकार की भूमिका

महिलाओं के विकास एवं सशक्तीकरण के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर विभिन्न प्रकार की नीतियों की घोषणाएं की जाती रही हैं जिनके परिणामस्वरूप महिलाओं के मामलों एवं मुदृदों के प्रति अनुकूल नीतिगत वातावरण का निर्माण हुआ है। सरकारी अर्ध–सरकारी एवं स्वैच्छिक संगठनों मे महिलाओं के विकास संबंधी विषयों के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है। समय–समय पर की गई कुछ नीतिगत घोषणाएं इस प्रकार हैं:

(अ) महिलाओं के लिए राष्ट्रीय कार्यवाही योजना– विकास संबंधी दिशा–निर्देश दिए गए।

(ब) महिलाओं के लिए दीर्घकालीन राष्ट्रीय योजना – इसमें विकास हेतु बल दिया गया।

(स) श्रम शक्ति प्रतिवेदन – इस प्रतिवेदन को स्वरोजगार युक्त महिलाओं एवं अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं से संबंधित राष्ट्रीय आयोग द्वारा 1988 में तैयार किया गया। इसमें असंगठित क्षेत्र में महिलाओं द्वारा अनुभव की जा रही समस्याओं पर ध्यान दिया गया तथा अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु उपाय दिए गए जो उन सेवा योजन द्वारा महसूस किए जा रहे व्यावहारिक खतरों उनको उपलब्ध कराये जाने वाले वैधानिक संरक्षण उनको प्रदान किए जाने वाले प्रशिक्षण एवं उनकी निपुणताओं में विकास, उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के विक्रय की व्यवस्था, उनको प्रदान किए जाने वाले ऋण की व्यवस्था इत्यादि से संबंधित हैं।

(द) महिला कैदियों के लिए राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति – इसमें महिला कैदियों की स्थिति का परीक्षण किया गया तथा उनसे संबंधित विधक सुधारो, जेल–सुधारों, तथा उनके पुनर्वासन के लिए अनेक संस्तुतियां की गई हैं।

(य) राष्ट्रीय पोषाहर – इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण देश की महिलाओं एंव बच्चों की पोषण संबंधी स्थिति में सुधार लाने हेतु अनेक प्रकार के सुझाव दिए गए।

राष्ट्रीय महिला संसाधन केन्द्र

- महिलाओं के प्रति संचेतना जागरण
- कानूनी साक्षरता मैनुअल
- महिलाओं पर अत्याचारों की रोकथाम के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम
- महिलाओं को लाभ प्रदान करने वाली योजनाओं का अनुश्रवण
- शोध के संबंध में सूचना नेटवक्र प्रणाली
- शोध एवं प्रकाशन
- दक्षेश बालिका दशक के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम
- पारिवारिक जीवन संस्थान
- नारी–निकेतन सेवाएँ

महिला सशक्तीकरण में भी महिलाओं के तथा मानव समाज के ऊपर नियंत्रण करना शामिल है इसके द्वारा महिलाओं को शक्ति देना तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रोत्साहन करना होता है। इनको भौतिक तथा प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन जैसे कौशल श्रम आदि या फिर सूचना, विचार और ज्ञान आदि सम्मिलित है। इसका मुख्य उद्देश्य स्त्री और पुरुषों के बीच शक्ति के संतुलन में परिवर्तन करना है ताकि समाज में शक्ति का अधिक सम्यक वितरण किया जा सके।

आर्थिक सशक्तीकरण, सामाजिक सशक्तीकरण, कानूनी सशक्तीकरण, राजनैतिक सशक्तीकरण आदि द्वारा महिलाओं का विकास करना। इन सब के लिए उनमें आत्मविश्वास, ज्ञान, शिक्षा आदि की वृद्धि करनी होगी और यह उनके कल्याण कार्यक्रमों से ही संभव है। अतः महिला सशक्तीकरण के लिए भी महिलाओं का कल्याण एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसके बिना उनका सशक्तीकरण करना संभव नहीं है। क्योंकि उसके लिए उन्हें अपने को परिवर्तित करना होगा अपने विचारों में परिवर्तन करना होगा ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।

श्रमिकों के साथ समाज कार्य–

हमारे देश में श्रम कल्याण कार्य की भावना का प्रादुर्भाव वास्तव में द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त हुआ। महायुद्ध की अवधि में जब निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ी तो आवश्यक वस्तुओं के दाम चढ़ गए, नगरों में आवासीय संख्या जटिल हो गई। खाने–पीने की वस्तुओं के दुर्लभता के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता कम हो गई और परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग त्राहि–त्राहि करने लगा। ऐसी परिस्थितियों में उद्योगपतियों, सरकार तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं का ध्यान श्रम कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। औद्योगिक अशांति, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का दबाव, राज्य के कल्याणकारी होने का विचार तथा बहुजन हिताय, बहुजन सुखास का ध्येय रखने वाले व्यक्तियों की मानवीय भावनाओं ने श्रम कल्याण कार्यों में रूचि स्थापित की। श्रम कल्याण कार्यों में उत्तरोत्तर प्रगति होती जा रही है। भारत में किए गए श्रम कल्याण कार्यों को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं:

(1) केन्द्रीय सरकार द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्य।

(2) राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्य।

(3) सेवा प्रायोजकों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्य।

(4) श्रमिक संघों द्वारा कल्याण कार्य।

(5) स्वायत्तशासन और धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य।

(6) संयुक्त राष्ट्र संघ एवं भारत में श्रम कल्याण कार्य।

केन्द्रीय सरकार द्वारा किए जाने वाले श्रम कल्याण कार्य

अगस्त 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से इस दिशा में सराहनीय प्रयास किये गए। केन्द्रीय सरकार ने ये प्रयास विभिन्न अधिनियमों को बनाकर मालिकों के लिए अनिवार्य कर दिया कि वे अधिनियमों के अंतर्गत श्रम कल्याण कार्यक्रम अनिवार्य रूप से अपनाएँ। इन्हें वैधानिक व्यवस्था की संज्ञा दी जा सकती है। कुछ प्रमुख व्यवस्थाएँ निम्नलिखित है :

(1) कारखाना अधिनियम, 1948 –

देश में श्रम कल्याणों में कारखाना अधिनियम का विशेष महत्व है। सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम, 1881 में पारित हुआ जिसका उद्देश्य कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ करना था। इस कानून द्वारा बच्चों के श्रम को ही सीमित

संरक्षण प्राप्त हुआ। वयस्कों की स्थिति ज्यों की त्यों रही। अतः वयस्कों की स्थिति में सुधार के उद्देश्य से दूरस्थ कारखाना अधिनियम पास हुआ। जिसमें बच्चों को और सुविधाएँ प्रदान करने के अतिरिक्त स्त्रियों को भी सुरक्षा मिली। इसके बाद तीसरा अधिनियम पास होने पर ही पहली बार पुरूषों को कुछ सुविधाएँ प्राप्त हुई। इस अधिनियम की व्यवस्था दोषपूर्ण थी जिन्हें ठीक करने के लिए इसमें कई बार संशोधन किए गए।

(2) स्त्री श्रमिक को संरक्षण –

1. खतरनाक मशीनों पर स्त्री श्रमिकों को काम पर लगाना निषेध घोषित कर दिया गया है।
2. चलती मशीन की सफाई करने, उसमें तेल डालने अथवा उसे सुधारने के लिए किसी भी स्त्री श्रमिक को काम पर नहीं लगाया जा सकता।
3. अगर किसी कारखाने में कम से मक 50 स्त्रियाँ कार्य कर ही हैं तो उस कारखानों में सेवायोजक को 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए शिशु गृहों की व्यवस्था करनी होगी।
4. स्त्री श्रमिक से सप्ताह में अधिक से अधिक 38 घंटे तक और प्रतिदिन 9 घंटे तक काम लिया जा सकता है।
5. अगर किसी कारखाने में कपास की धुनाई का यंत्र प्रयोग किया जा रहा हैं और धुनाई का कमरा व प्रेस का कमरा दोनों ही पास–पास है तो किसी भी स्त्री को कपास पर प्रेस करने के कार्य पर नहीं लगाया जा सकता।

(3) कल्याण कार्य संबंधी आदेश –

श्रमिकों के लिए जलपान गृहों, विश्रामलयों स्त्री श्रमिकों के छोटे बच्चों को दिन में रखने के लिए शिशु गृहों में बैठने की व्यवस्था, प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा, वस्त्र धोने के स्थान आदि की सुविधा दी जानी चाहिए।

(4) सफाई व स्वास्थ्य –

1. कारखानों की सफाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
2. प्रत्येक कारखाने में शुद्ध वायु के आने के लिए एवं गंदी वायु के जाने के लिए पर्याप्त झरोखे होने चाहिए।

3. कारखाने में पीने का पानी, पेशाबघर तथा शौचालयों का भी प्रबन्ध आवश्यक है।

4. कारखाने के तापक्रम का श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही निम्न श्रम कल्याण योजनाएँ

1. चिकित्सालय एवं औषधालय।
2. बीड़ी तथा खान श्रमिकों के लिए क्षय रोग चिकित्यालायों में बिस्तरों की आरक्षण योजना।
3. क्षय रोग से ग्रस्त बीड़ी तथा खान श्रमिकों के घर पर इलाज की योजना करने की व्यवस्था।
4. कैंसर से पीड़ित बीमा/सिनेमा/खान श्रमिकों के इलाज की योजना।
5. मानसिक रोगों से ग्रस्त बीड़ी तथा खान श्रमिकों के इलाज की योजना।
6. लौह खनिज, चूना पत्थर तथा डोलामाइट खानों के प्रबंधकों को ऐम्बूलेन्स खरीदने के लिए अनुदान की योजना।
7. बीड़ी, खान तथा सिनेमा श्रमिकों के द्वारा गुर्दे बदलवाने पर किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति।
8. आवासीय सुविधाएँ।
9. शैक्षणिक सुविधाएँ।
10. मनोरंजनात्मक सुविधाएँ।

श्रम कल्याण कार्य की नयी दिशाएँ

1. परिवार नियोजन को प्राथमिकता
2. सस्ती दर पर वस्तुएं
3. संतुलित भोजन की प्राथमिकता
4. दृष्टिकोण में परिवर्तन
5. स्थानीय सहयोगियों को सहयोग

1.4.2 चिकित्सीय व मनोचिकित्सीय समाज कार्य
(Therepetical and Psycho-therepetical Social Work)

चिकित्सीय समाज कार्य

यदि चिकित्सीय समाज कार्य की परिभाषा करने के लिए कहा जाय तो हम कह सकते हैं कि यह सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता से रोगी को दी जाने वाली चिकित्सक से अपेक्षित वैयक्तिक सेवा है। यह सहायता प्रदान करते समय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को सामाजिक प्राणी के रूप में उसकी आवश्यकताओं, भावनाओं और विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में, जो उसके रोग को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती है, समझने की कोशिश करता है। वह रोगी की स्थिति चिकित्सक को बतलाता है। चिकित्सक रोग का इलाज करता है किन्तु रोगी के आरोग्य के लिये और परिवार तथा समाज में सुस्थिर होने के लिए उसके मानवीय पक्ष को ठीक करना भी उतना ही आवश्यक है। अतः चिकित्सीय सामाजिक कार्य का उद्देश्य रोगी के शारीरिक तथा सामाजिक पक्षों में अनुकूलता स्थापित करना ताकि सक्रिय सम्बन्धों के आधार पर सृजनात्मक जीवन की उपलब्धि हो सके।

चिकित्सीय सामाजिक कार्य तथा मनश्चिकित्सीय सामाजिक कार्य–

सामाजिक कार्य का उद्देश्य व्यक्ति या समाज में समायोजन करना है। कभी–कभी रोगियों का समाजयोजन भी अपेक्षित होता है। यह समायोजन एक ओर रोगी और दूसरी ओर चिकित्सक तथा अस्पताल के बीच हो सकता है अथवा एक ओर रोगी तथा उसके परिवार और बृहतर समाज के बीच हो सकता है अतः चिकित्सा के लिए मानव सम्बन्धों में प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता की भी आवश्यकता होती है।

मनश्चिकित्सीय सामाजिक कार्यकर्त्ता

पुराने समय में पारिवारिक चिकित्सक होते थे जो परिवार की सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि तथा स्थिति से भली–भाँति परिचित होते थे। किन्तु आधुनिक युग में अन्य क्षेत्रों की भांति चिकित्सा के क्षेत्र में भी विशेषीकरण हो गया है। चिकित्सा के लिए बड़े–बड़े अस्पताल स्थापित किए जाते हैं, जिनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त इन अस्पतालों में व्यक्ति के रोग पर न कि स्वयं व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष तथा मानव सम्बन्धों की उपेक्षा हो जाती है। आज चिकित्सा विज्ञान की इतनी उन्नति हो चुकने पर व्याधिग्रस्त व्यक्तियों की आवश्यकताएँ जटिल हो गई है। अतः रोगी की सहायता कई बातों पर निर्भर है, जैसे रोग किस तरह का है, रोगी कैसा है, अस्पताल का क्या रूप है, रोगी का सामाजिक परिवेश कैसा है, और समाज कितना साधन–सम्पन्न है। अतः रोगी और

उसके सामाजिक पर्यावरण के बीच समायोजन स्थापित करने के लिए सामाजिक कार्यकर्त्ता की आवश्कयता होती है।

कार्य–क्षेत्र

सामाजिक कार्यकर्ता निम्नांकित क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है–

(क) सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (Public Health Programmes)

(ख) प्रसूति शिशु कल्याण (Maternity and Child Welfare)

(ग) रति रोग चिकित्सा केन्द्र (V.D.Clinics)

(घ) बाल कक्ष (Children's Wards)

(ङ.) आरोग्य सदन (infirmary)

(च) मानसिक चिकित्साल्य और मनश्चिकित्सा केन्द्र (Mental Hospitals and Psychiatric Chincs)

(छ) सामान्य अस्पताल (General Hospitals)

(ज) ग्राम्य स्वास्थ्य एकक (Rural Health Uints)

(झ) क्षयरोग आरोग्यनिवास (T.B. Sanitoria)

(ञ) अविवाहित माताओं की समस्याएँ (Problems of Unmarried mothers)

(ट) मधुमेह, कैंसर और कुष्ठ–ग्रस्त रोगी तथा विकलांग व्यक्ति (Disabled and handicapped persons.)

चिकित्सीय सामाजिक कार्य के लिए निम्नांकित आवश्यकताएँ हैं–

(क) एक चिकित्सीय सामाजिक कार्यकर्ता होना चाहिए जिसे चिकित्सा की सम्बन्धित शाखा के विषय में साधारण जानकारी हो।

(ख) सामाजिक कार्य का कोई विभाग अथवा एजेन्सी होना जरूरी है।

(ग) गरीब रोगियों के सहायतार्थ आवश्यक धन होना चाहिए।

(घ) ऐसे सम्पर्क हों जिनका उपयोग रोगियों के पुनर्वास के लिए किया जा सके।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्य की प्रणाली

औसत दर्जे का सामान्य व्यक्ति अस्पतालों के सम्बन्ध में अपनी एक निश्चित धारणा रखता है। उसकी दृष्टि में अस्पताल एक ऐसा स्थान है जहां बीमार व्यक्ति जाते हैं, और अस्पताल का काम बीमारों की चिकित्सा करना तथा उन्हें अच्छा करना है। यद्यपि अस्पतालों के विभिन्न विभागों

की संख्या और विविधता से सामान्य व्यक्ति को कुछ घबराहट और उलझन हो सकती है, पर थोड़ी कठिनाई के बाद उसे यह बात मालूम हो जाती है कि विभिन्न विभागों के डाक्टर कैसे और क्या करते हैं। उदाहरण के लिए, सामान्य व्यक्ति पहले 'पैडियाट्रिक्स' शब्द सुन कर चौकता है, पर शीघ्र ही जान जाता है कि यह वह विभाग है, जहां बालकों की चिकित्सा होती है। उसी तरह वह आब्स्टेट्रिक्स का अर्थ प्रसूति–विज्ञान समझ लेता है और फिर शीघ्र ही वह आँख, कान, नाक, और गले की चिकित्सा के विभागों का नाम भी जान जाता है। उनको जानने के लिए शब्दकोश की भी आवश्यकता नहीं होती। अस्पताल की तरह चिकित्सीय सामाजिक कायकर्ता के सामने भी केन्द्रीय समस्या मरीज की बीमारी ही होती है। जब कोई रोगी अस्पताल में दवा कराने आता है तो अस्पताल के सभी सम्बन्धित विभाग उसे नीरोग करने के प्रयत्न में जुट जाते हैं। चिकित्सा-- विज्ञान की जितनी जानकारी और कौशल होते हैं? उस रोगी को सुधारने और रोगमुक्त करने में उपयोग किया जाता है। उसके रक्त की परीक्षा होती है और रक्त–कणिकाओं को गिना जाता है, फेफडों का एक्स–रे होता है, दिल का परीक्षण होता है, चर्म का परीक्षण होता है, मूत्र का परीक्षण होता है, सहज क्रियाओं का परीक्षण होता है, पाचन–क्रिया की जाँच की जाती है। ये कुछ ऐसे कार्य हैं, जो प्रायः कम परेशानी वाले होते हैं। यह सब यह पता लगाने के लिए किया जाता है कि रोगी को क्या बीमारी है ताकि उसी के आधार पर उसका उपचार हो सके। पर कभी–कभी बीमारी की जाँच–पड़ताल इतने जोर–शोर से होती है कि उस प्रवाह में बेचारे रोगी व्यक्ति की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। पर एक बार जब रोग का पता चल जाता है अर्थात् उसका निदान हो जाता है। तो उसके उपचार का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। चिकित्साशास्त्र की अच्छी–से–अच्छी पुस्तकों के आदेश के आधार पर रोगी के उपचार की विस्तृत योजना बनायी जाती है। इस तरह फिर रोग का ही उपचार प्रारम्भ हो जाता है, रोगी पीछे रह जाता है।

स्पष्ट है कि इन बातों को शायद कुछ अतिरंजित करके कहा जा रहा है। ये बातें सभी अस्पतालों और सभी चिकित्सकों पर लागू नहीं होतीं।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्य का प्रारम्भ और संरक्षण पूर्व चिकित्सकों द्वारा हुआ था और इस समय भी हो रहा है। यह विश्वास है कि व्यक्ति (रोगी) और रोग दोनों का उपचार होना चाहिए। इस वक्तव्य से इस तथ्य पर प्रकाश पडता है कि ऐसे बहुत–से अस्पताल और चिकित्सक हैं, जिन्होंने अस्पताल के संघटन के भीतर वैयक्तिक समाज–सेवा–कार्यकर्ता की सेवाओं को पूरक सेवा के रूप में आवश्यक माना है। पर इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि इस तरह अस्पताल की सेवाओं में चिकित्सक की सेवाओं का महत्व कम करके आँका जाय। उसका आधार यह तथ्य है कि चिकित्सा–सम्बन्धी प्रशिक्षण का सम्बन्ध मुख्यतः रोग की सम्यक् पहचान या ज्ञान से होता है और इसी कारण आधुनिक अस्पतालों में भी जहां, उपकरण की पूर्णता होती है, कुशल प्रविधिज्ञों का दल होता है, चिकित्सा–प्रविधि में प्रशिक्षित कर्मचारी होते हैं और नित्य अनगिनत मरीजों का आना–जाना लगा रहता है, रोग के चिकित्सात्मक पहलू पर ही बल दिया जाता है। दूसरी ओर अक्सर ऐसा भी होता है कि प्रशिक्षित होने वाले तथा अस्पताल में काम करने वाले ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो यह समझते हैं कि रोग–सम्बन्धी उनके ज्ञान का प्रयोग सब से पहले रोगियों पर ही होना चाहिए।

1.4.3 विद्यालयगत समाजकार्य (School Based Social Work)

स्कूल समाज कार्य का इतिहास बहुत पुराना है। इसका प्रारम्भ सन 1906–07 में संयुक्त राज्य अमेरीका के न्यूयार्क, बोस्टन, शिकागो, न्यू हेवेन इत्यादि नगरों में हुआ। इसके प्रारम्भिक अवस्था में विद्यालयगत सामाजिक कार्यकर्ता निष्पक्षता के साथ समानता एवं न्यायपूर्णता की पैरवी करने वालों के रूप में जाने जाते थे। विद्यालयगत समाज कार्य के विस्तार में बहुत से कारकों का योगदान है। सन 1900 तक अमेरीका के लगभग दो तिहाई राज्यों में कक्षाओं में अनिवार्य उपस्थिति का नियम लागू हो चुका था और वर्ष 1918 तक सभी राज्यों में यह नियम लागू हो चुका था।

सन्त 1917 में शिकागो में स्कूल से भागने वाले बच्चों पर एक अध्ययन किया गया, जिसमें देखा गया कि विद्यालय में बच्चे क्यों अनुपस्थित होते हैं। उसके पश्चात विद्यालयों में उपस्थिति लेने वाले अध्यापकों एवं अधिकारियों को प्रशिक्षित कर उन्हें उस दायित्य के योग्य बनाया गया।

इन प्रयोगवादी आन्दोलनों से शिक्षक विभिन्न प्रकार की नयी–नयी अवधारणों व ज्ञान को सीख रहे थे जैसे व्यक्ति से व्यक्ति की भिन्नता अर्थात व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्तिगत भिन्नता , कम अंक पाने वाले कुछ बच्चों को स्कूल अनिवार्य रूप से जाने की आव यकता, बच्चों की सामाजिक स्थिति का सम्बन्ध उनके मूल्यांकनो से सम्बन्धित था।

जिन बच्चों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी उन बच्चों के कक्षाओं में अंक भी कम थे और जिन बच्चों की सामाजिक स्थिति अच्छी थी उनके अंक अच्छे थे । इस प्रकार विभिन्न नये–नये प्रकार के ज्ञान से लोग भिज्ञ हो रहे थे । उस समय इस समस्याओं पर कार्य करने वालों में सोफोनिस्वा पी0 ब्रेकेनरीज (Sophonisba P. Brecken ridge) ने विचार व्यक्त किया कि भविष्य की सफलता, प्रसन्नता एवं समृद्धि के लिए विद्यालय एवं शिक्षा को अधिक से अधिक अन्तर्सम्बन्धित किया जाना आवश्यक है, साथ हीं साथ बच्चों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विद्यालय एवं बच्चों के घर का सम्बन्ध बहुत हीं महत्वपूर्ण है। इससे सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों के अभिभावकों से सम्पक्र के माध्यम् एवं गृह भ्रमण से परिवार की पूरी जानकारी प्राप्त कर बच्चे के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे पायेंगे ।

सन 1920 में मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान आन्दोलन ने संकटग्रस्त बच्चों में स्नायु सम्बन्धी विकार यथा घबराहट, अधीरता, उत्तेजना सम्बन्धी विकार या रोग व उनके व्यवहारगत समस्याओं से सम्बन्धित था। सन 1930 के पास स्कूल समाज कार्य एवं स्कूल परामर्श सेवाओं जैसे कार्यक्रम की गति मंद हो गयी लेकिन पुनः 1940 से 1960 के मध्य विद्यालयों में वैयक्तिक कार्य (case work) एक व्यवस्थित विशिष्ट पद्वति के रूप में स्थापित हुई । इस व्यवसाय ने विद्यालय के अध्यापकों एवं अन्य कार्मिकों के बीच सहयोग एवं आपसी संवाद , संचार जैसे गतिविधियों पर प्रभावकारी रूप से कार्य करने पर बल दिया । इस समय तक विद्यालयगत सामाजिक कार्यकर्ता एक ऐसे विशेषज्ञ के रूप में स्थापित हो चुका था जो विद्यालयों में मनोसामाजिक रूप से बाधित बच्चों की समस्याओं का निदान कर सके ।

शैक्षणिक शोध एवं शासकीय सुधारों के कारण विद्यालयगत सामाजिक कार्यकर्ता प्रभावित हो रहे थे । सन 1960 में " पुपिल परसनेल ला" के द्वारा विद्यालय की नीतियों के निर्माण पर विद्यालयगत सामाजिक कार्यकर्ता के प्रभावों का विस्तार से प्रकाश डाला गया। विद्यालय में कहीं भी

बालकों की समस्यायें उत्पन्न होती थी, तब उन समस्याओं के कारणों की खोज एवं निदान के लिए स्कूल परामर्शदाता व सामाजिक कार्यकर्ताओं को बुलाया जाता था । सन 1970 में विद्यालयगत समाज कार्य सेवायें अधिकारिक रूप से स्वीकार कर ली गयी थी ।

विद्यालय–समुदाय–विद्यार्थी सम्बन्ध प्रारूप (School community – Pupil relationship model)

लीला कास्टींन (Lila Costin) ने इस प्रारूप के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। यह विद्यालय, समुदाय एवं विद्यार्थी तीनो के मध्य अन्तःक्रिया पर केन्द्रित है। इस प्रारूप में विद्यालय सामाजिक कार्यकर्ता मध्यस्थ (Mediators), संधिवार्ताकार (Negotiators), परामर्शदाता (Consultant), एवं विधि पैरवीकार (Advocates), के रूप में विद्यार्थियों, स्कूल के कर्मचारियों, अध्यापकों की समस्याओं को ध्यान से सुंनता है और उनके सामाधान के लिए कार्य करता है। ये कार्यकर्ता समस्या सामाधान हेतु विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं विद्यालय के अन्य कार्मिकों के लिए औपचारिक समूहों का भी गठन करते हैं। इस प्रारूप में विद्यालयगत सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा विद्यार्थियों की चारित्रिक विशेषताओं, विद्यालय एवं समुदाय की दशाओं, आदि का मूल्यांकन भी सम्मिलित किया गया है। क्योंकि उपरोक्त सभी दशाएं लक्ष्य समूह (यथा मादक द्रव्य व्यसन करनेवाली विद्यार्थी अपंगताग्रस्त विद्यार्थी इत्यादि) के लिए शिक्षा की उपलब्धता एवं शैक्षणिक अवसरों को प्रभावित करती हैं।

विद्यालयों में विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पहचान करने एवं आवश्यकता के स्तरों की पहचान करने के लिए आवश्यक ज्ञान के आधारों को विस्तारित करने में विद्यालयगत समाज कार्य की भूमिका और विस्तृत होने की संभावना है । इसे दो प्रमूख उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है ।

संयुक्त राज्य अमेरीका में समाज कार्य अभ्यास को राज्य नियमन करता है। 33 अधिशासी क्षेत्रों में विद्यालयगत समाजिक कार्यकर्ताओं को लाइसेंन्स देने का कार्य संचालित है। कुछ राज्य केवल एम.एस.डब्ल्यू डिग्री धारकों को हीं लाइसेन्स देते हैं लेंकिन कुछ राज्य बी.एस.डब्ल्यू को भी लाइसेन्स देने का कार्य करते हैं। भारत में अभी भी लाइसेन्स देने की प्रणाली प्रचलित नहीं है। National Association of social workers द्वारा लगभग 1.5 लाख लोगों को विद्यालयगत समाज कार्य में सर्टिफिकेट प्रमाणपत्र वितरित किया जा चुका है। लेकिन स्कूल में रोजगार के लिए इन प्रमाण–पत्रों की अनिवार्यता नहीं है ।

The council on social work education (c.s.w.e) अमेरीकान B.S.W. एवं M.S.W. स्तर के पाठयक्रमों का मूल्यांकन करने वाली संगठन है । यह समाजकार्य के पाठ्यक्रम के लिए आधार पाठ्यक्रमों को नियंत्रित करती है। लेकिन एम.एस.डब्लू के विशेषीकृत पाठ्यक्रमों का उसके विशेषज्ञों द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर मूल्यांकन किया जाता है। समाजकार्य के परास्नातक पाठ्यक्रम में विशेषज्ञता हेतु समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान में स्नातक पाठ्यक्रम पूर्ण करनेवाले स्नातक को वरीयता दी जाती है । समाजकार्य पाठ्यक्रम के सम्बन्ध राष्ट्रीय स्तर पर Tola Institute of social scians द्वारा Indian journal of social work का प्रकाशन प्रत्येक तीन माह पर किया जाता है । इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अमेरीका में School Social Work Journal का प्रकाशन Association of School social workers द्वारा किया जाता है। भारत में चेन्नई से भी School Social Work Journal का प्रकाशन किया जाता हैं ।

1.4.4 ग्रामीण, शहरी एवं जनजातीय सामुदायिक कल्याण (Rural, Urban and Tribal Community Welfare)

ग्रामीण एवं नागरीय समुदाय

ग्राम एंव नगर मानव के सामाजिक जीवन के दो पहलू है। गाँवों का प्रकृति से निकट एवं प्रत्यक्ष सम्पर्क पाया जाता है। ग्रामीण समुदाय में मानव एवं प्रकृति के बीच अन्तःक्रिया का स्वरूप अधिक निकट, प्रत्यक्ष एंव प्राथमिक है, जबकि नगरीय समुदाय में दूर, अप्रत्यक्ष तथा द्वितीयक है। ग्रामीण एवं नगरीय जीवन को स्पष्टतः समझने हेतु ग्राम एवं नगर की अवधारणा का ज्ञान आवश्यक है।

ग्रामीण समुदाय का अर्थ एवं परिभाषा

व्यवसाय के आधार पर ग्राम उन समुदायों को कहते हैं जहाँ अधिकांश लोग कृषि कार्य करते हैं तथा नगर उस समुदाय को कहते हैं जहाँ के निवासी गैर–कृषि व्यवसायों में लगे रहते हैं। कुछ विद्वानों ने प्राथमिक सम्बन्धों की बहुलता वाले क्षेत्र को ग्राम तथा द्वितीयक सम्बन्धों की बहुलता वाले क्षेत्र को नगर कहा है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ग्राम वह क्षेत्र है जहाँ प्राथमिक सम्बन्ध, हम भावना तथा सामुदायिक भावना की विशेषताएँ पायी जाती है।

डी0 सेण्डर्सन के अनुसारः– ''एक ग्रामीण समुदाय संघ का वह स्वरूप है जो एक स्थानीय क्षेत्र में जनता एवं उनकी संस्थाओं के बीच पाया जाता है, जिसमें वे बिखरे हुए खेतों की झोपड़ियों में एवं ग्राम में रहते हैं जो उनकी सामान्य गतिविधियों का केन्द्र होता है।

ग्रामीण समुदाय की विशेषताएँ–

ग्रामीण समुदाय की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है–

1. ग्रामीण जीवन प्रकृति पर निर्भर है

कृषि ग्रामीण जीवन का मुख्य व्यवसाय है जो भूमि, मौसम, वर्षा, शीत, गर्मी से प्रभावित होता है। ग्रामीण समुदाय के लोगों का जीवन कृषि, पशुपालन, ग्रामीण उद्योगों तथा शिकार पर निर्भर करता है।

2. समुदाय का छोटा आकार

प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता ग्रामीण समुदाय को आकार में छोटा बनाती है, क्योंकि कृषि कार्य अथवा पशुचारण में जीवन–यापन के लिए प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा अधिक होनी चाहिए अन्यथा सभी लोगों का जीवन निर्वाह सम्भव नहीं होगा।

3. कम जनसंख्या

गाँव में प्रति वर्ग मील जनसंख्या का अनुपात शहरों की अपेक्षा बहुत कम है। कम घनत्व के कारण ग्रामीण क्षेत्र घनी बस्तियों की समस्या–जैसे अस्वास्थपूर्ण वातावरण, गन्दगी, बीमारी, इत्यादि से बचे रहते हैं।

4. प्रकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध

ग्रामीण समुदाय का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ग्रामीण लोग शुद्ध हवा, पानी, प्रकाश, सर्दी, गर्मी आदि का अनुभव करते हैं।

5. प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता

गाँव का आकार छोटा होने से प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानता है। उनमें निकट, प्रत्यक्ष अनौपचारिक और घनिष्ट सम्बन्ध होते है। ऐसे सम्बन्धों का आधार परिवार, पड़ोस एवं नातेदारी है। वे कृत्रिमता से दूर होते है। उनमें पारस्परिक सहयोग एंव प्राथमिक नियत्रंण पाया जाता है।

6. सरल एवं सादा जीवन

ग्रामीण लोगों का जीवन सरल–सादा, अकृत्रिम तथा अडम्बर एवं बनावट से दूर होता है। साधारण और पौष्टिक भोजन, शुद्ध वायु, मोटा वस्त्र तथा विनम्र एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार ग्रामीण लोगों की पसन्द हैं।

7. सामाजिक गतिशीलता का अभाव

ग्रामीण समाज अपेक्षाकृत स्थिर समाज है, उसमें सापेक्ष रूप से गतिशीलता का अभाव होता है। जाति व्यवस्था ही सामाजिक संस्तरण का मुख्य आधार है। जातिगत व्यवसाय होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने परम्परागत व्यवसाय में लगा रहता है।

8. धर्म, प्रथा एवं रूढ़ियों का महत्व

ग्रामीण समाज में सामाजिक नियन्त्रण के अनौपचारिक साधन–––धर्म, प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, ग्रामीण जीवन को नियन्त्रित करती है। पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, धर्म–कर्म, अच्छाई–बुराई की भावनाएँ उनके जीवन को प्रभावित करती रहती है। वे प्रथाओं एवं रूढ़ियों के अनन्य–भक्त होते हैं, उन्हें तोड़ना पसन्द नहीं करते। बाल–विवाह, मृत्यु–भोज, विधवा पुनर्विवाह निषेध, छूआ–छूत, दहेज आदि की प्रथाएँ हानिकारक होते हुए भी अभी तक ग्रामीण समाज में प्रचलित है।

9. सामुदायिक भावना

गाँव शहर की अपेक्षा छोटा होता है। वहाँ के प्रत्यक्ष एवं अनौपचारिक सम्बन्ध के कारण लोगों में 'हम भावना' अधिक पायी जाती है। सभी लोग अपने को गाँव का सदस्य समझते है। बाढ़, अकाल, महामारी और अन्य संकटकालीन अवसरों पर गाँव के सभी लोग सामूहिक रूप से इन संकटों का मुकाबला करते हैं।

10. संयुक्त परिवार

भारतीय गाँव संयुक्त परिवार प्रधान समुदाय है, जिनमें तीन या अधिक पीढ़ी के सदस्य एक साथ रहते हैं। इनका भोजन, सम्पत्ति और पूजापाठ, धार्मिक क्रियाकलाप एक साथ होता है। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार का मुखिया होता है। वही परिवार के आन्तरिक एंव बाह्य कार्यों के लिए निर्णय लेता है।

11. कृषि व्यवसाय

भारतीय गाँवों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। भारत की जनसंख्या के 70 से 75 प्रतिशत लोग कृषि या कृषि–आधारित व्यवसाय पर निर्भर करते हैं।

12. जाति प्रधान सामाजिक व्यवस्था

जाति के आधार पर ग्रामीण संस्तरण पाया जाता है। जाति एक सामाजिक संस्था एवं समिति दोनों हैं। जाति का निर्धारण जन्म से होता है। जाति की पंचायत होती है जो अपने सदस्यों के व्यवहार, आवरण एवं जीवन को नियन्त्रित करती है। जाति के नियमों का उल्लंघन करने पर सदस्यों को जाति से बहिष्कार, दण्ड अथवा जुर्माना आदि की सजा भुगतनी पड़ती है।

13. जजमानी प्रथा

जाति प्रथा की एक विशेषता यह है कि प्रत्येक जाति का एक निश्चित परम्परागत व्यवसाय होता है। इस प्रकार जाति व्यवस्था ग्रामीण समाज में श्रमविभाजन करती है। सभी जातियाँ परस्पर एक दूसरे की सेवा करती है। ब्राह्मण विवाह, उत्सव एवं त्योहार के समय दूसरी जातियों के यहाँ अनुष्ठान करवाते हैं, तो नाई–बाल काटने, धोबी कपड़े धोने, ढोली ढोल बजाने, जाटव (मोची) जूते बनाने, जुलाहे कपड़े बुनने का, दर्जी कपड़े सिलने का काम, लोहार लोहे का काम करते हैं। जजमानी प्रथा के अन्दर एक जाति दूसरी जाति की सेवा करती है। उसके बदले में सेवा प्राप्त करने वाली जाति भी उसकी सेवा करती है अथवा वस्तुओं का भुगतान करती है। एक किसान परिवार में विवाह होने पर नाई, धोबी, जाटव, सुनार, दर्जी सभी अपनी–अपनी सेवाएँ प्रदान करते है। बदले में उन्हें कुछ नकद, कुछ भोजन, वस्त्र, अनाज आदि दिया जाता है।

14. ग्राम पंचायत

प्रत्येक गाँव में एक ग्रामपंचायत होती है जिसका प्रधान गाँव का मुखिया होता है। ग्राम पंचायत का मुख्य कार्य सफाई, विकासकार्य और ग्रामीण विवादों को निपटाना है। गाँव के आन्तरिक कार्यों का प्रबन्ध का कार्य ग्राम पंचायत का है।

15. सामाजिक समरूपता

भारतीय ग्रामीण समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक समरूपता देखने को मिलती है। सभी लोग एक जैसी भाषा, वस्त्र, त्योहार, उत्सव, प्रथा, परम्पराओं एवं जीवन विधि का प्रयोग करते हैं। उनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन में गहरी खाँई और विभेद नहीं पाया जाता। उनके यहाँ अनेक प्रान्तों, वर्गों, भाषा–भाषियों, क्षेत्रों, वर्गों तथा प्रजातियों और देशों के लोग निवास नहीं करते। फलस्वरूप उनके जीवन में समानता और एकरूपता की धारा बहती है।

16. स्त्रियों की निम्न स्थिति

भारतीय ग्रामीण समुदाय में नारी की स्थिति अत्यन्त निम्न है। कन्यावध, बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दाप्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पुरूष–निर्भरता, पारिवारिक सम्पत्ति में स्त्रियों का अधिकार न होना, विवाह–विच्छेद का अभाव आदि ऐसे अनेक महत्वपूर्ण कारण है, जो भारतीय ग्रामीण महिलाओं को स्थिति नगरीय महिलाओं की तुलना में निम्न बनाए हुए हैं।

17. अशिक्षा

गाँवों की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। भारत में 35 प्रतिशत लोग शिक्षित है जिसमें बहुत कम ग्रामीण जनसंख्या शिक्षित है। अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण उनका खूब शोषण होता है।

18. आत्मनिर्भरता

भारतीय ग्रामीण व्यवस्था की विशेषता आत्मनिर्भरता रही है। यह आत्मनिर्भरता आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, न्यायिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में देखने को मिलती है। जजमानी–प्रथा द्वारा जातियाँ परस्पर एक दूसरे की आर्थिक हितों की पूर्ति करती है। राजनैतिक तथा न्यायिक दृष्टि से ग्राम तथा न्याय पंचायत एवं ग्राम का मुखिया राजनैतिक निर्णयों तथा गाँवों के विवादों को सुलझाता हुआ ग्रामीण विकास का कार्य करता है।

नगरीय समुदाय का अर्थ एवं परिभाषा

नगरीय जीवन यद्यपि जनसंख्या के घनत्व, औपचारिक सम्बन्ध के आधार पर स्पष्ट किया जाता है, परन्तु नगर की अवधारणा को समझाने के लिए कुछ परिभाषाओं को दृष्टिगत करने की आवश्यकता है।

बर्गल ने ठीक ही कहा है, ''प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि नगर क्या है परन्तु किसी ने भी सन्तोषजनक परिभाषा नहीं दी है।'' यह जीवन जीने का विशिष्ट ढंग और विशिष्ट संस्कृति का सूचक है। नगरों की जनसंख्या एवं जनसंख्या घनत्व अधिक होता है। व्यवसायों की बहुलता एवं भिन्नता, औपचारिक एवं द्वितीयक सम्बन्धों की बहुलता, भोगवाद, व्यक्तिवाद, कृत्रिमता, जटिलता, व्यस्तता, गतिशीलता आदि नगरीय जीवन की प्रमुख विशेषताएँ है। ''नगर की परिभाषा जनसंख्या के आधार पर की गयी है।'' अमेरिका की जनगणना ब्युरो ने नगर, एक ऐसे स्थान को माना है जहाँ की जनसंख्या 25000 या उससे अधिक है। फ्रांस में 2000, मिश्र में 11000, वाले क्षेत्र को नगर माना है। विकॉक्स ने ऐसे क्षेत्र को नगर माना है जहाँ का जनसंख्या घनत्व 1000; प्रति व्यक्ति प्रति वर्गमील है तथा जेफरसन ने 10000, प्रति वर्ग मील आबादी के क्षेत्र को नगर को नगर कहा है। विलकॉक्स के अनुसार– ''जहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि है, उसे गाँव तथा जहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि से इतर व्यवसाय है, उसे नगर कहेंगें'' बर्गल के अनुसार ''नगर ऐसी संस्था है जहाँ के अधिकतर निवासी कृषि कार्य के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में व्यस्त हैं।''

लुईस वर्थ नगर को परिभाषित करते हुए कहते है कि– ''समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक नगर की परिभाषा सामाजिक भिन्नता वाले व्यक्तियों के बड़े घने बसे हुए एवं स्थायी निवास के रूप में की जा सकती है।''

मेमफोर्ड के अनुसार नगर स्पष्ट अर्थों में एक भौगोलिक ढाँचा है, एक आर्थिक संगठन, एवं एक संस्थात्मक प्रक्रिया; सामाजिक प्रक्रियाओं का मंच और सामूहिक एकता का एक सौन्दर्यात्क प्रतीक।

उपरोक्त परिभाषाओं पर दृष्टिगत करने पर स्पष्ट होता है कि नगर वह क्षेत्र है, जहाँ जनसंख्या की बहुलता एंव विविधता; गैर कृषि व्यवसाय, श्रम विभाजन एंव विशेषीकरण युक्त औपचारिक–द्वितीयक सम्बन्ध, के अतिरिक्त सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक विभिन्नताएँ पायी जाती है तथा कृत्रिमता, भौतिकवादिता, व्यक्तिवादिता, प्रतिस्पर्द्धा एंव घनी जनसंख्या के कारण सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक साधनों के द्वारा संगठन की स्थापना की जाती है।

नगरीय जीवन की विशेषताएँ

नगरीय जीवन की निम्नांकित विशेषताएँ है–

1. जनसंख्या का आधिक्य

नगरीय समुदाय की प्रमुख विशेषता इसका बड़ा आकार एंव घनी जनसंख्या का होना है। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, लंदन जैसे नगरों में जनसंख्या का घनत्व 10000 व्यक्ति प्रतिवर्गमील से भी अधिक है। इसके परिणामस्वरूप नगरों में अनैतिकता, अपराध, स्वास्थ्य एवं सफाई की समस्याएँ देखने को मिलती है।

2. जनसंख्या में विभिन्त्ता

नगरीय समुदाय की जनसंख्या में धर्म, सम्प्रदाय, जातिवर्ग, प्रान्त, क्षेत्र, भाषा व्यवसाय और जीवनस्तर के आधार पर अत्यधिक विषमता पायी जाती है। इस प्रकार महानगर एवं नगर एक ऐसे समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ सभी को अपनी रूचि तथा आवश्यकता वाले समूह मिल जाते हैं। व्यक्ति इनमें से किसी भी समूह को सदस्यता ग्रहण करने के लिए स्वतन्त्र होता है।

3. आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र

नगरों का निर्माण आर्थिक जीवन की सफलता से हुआ और आज भी नगरीय समुदाय आर्थिक क्रियाओं के केन्द्र बने हुए है। नगर में लोग उत्पादन, वितरण एवं प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में लगे है। यातायात, संचार, सुरक्षा तथा न्याय की सुविधा होने के कारण सभी साहसी व्यक्ति नगरों में ही स्थायी रूप से निवास करना पसन्द करते हैं।

4. विभिन्न आर्थिक वर्ग

यद्यपि नगरीय समुदाय में व्यक्ति की धर्म, सम्प्रदाय, जाति एवं भाषा का कोई विशेष महत्व नहीं है, लेकिन आर्थिक आधार पर जनसंख्या कुछ वर्गों में बँट जाती है। प्रत्येक वर्ग अपने सदस्यों के हितों के प्रति जागरूक रहता है। आर्थिक विषमता इतनी रहती है कि एक ओर कुछ व्यक्तियों का उत्पादन के सम्पूर्ण साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है तथा दूसरी तरफ ऐसे व्यक्ति होते है जिन्हें एक समय भोजन करके ही सन्तोष करना होता है। तीसरा वर्ग मध्यम वर्ग का होता है जो सर्वाधिक विषम परिस्थितियों से घिरा होता है क्योंकि एक ओर इस वर्ग के व्यक्तियों से सबसे अधिक कार्य करने की आशा की जाती है तथा दूसरी तरफ इस वर्ग की आय इसती कम होती है कि इससे अनिवार्य आवश्कयताओं की भी पूर्ति नहीं हो पाता। यही वर्ग समाज में सबसे अधिक परम्परावादी, धर्म–भीरू एवं रूढ़िवादी भी होता है।

5. स्थानीय पृथक्करण

नगरीय समुदाय में श्रमविभाजन एवं विशेषीकरण के कारण प्रत्येक कार्य का स्थान पूर्णतया नियत होता है। इसके आधार पर समाजशास्त्र में क्षेत्रीय सम्प्रदाय की धारणा विकसित हो गयी है। प्रायः नगर के मध्य में वे कार्यालय होते हैं जो सार्वजनिक जीवन के लिए उपयोगी हैं। इनके चारों ओर प्रमुख संस्थान, व्यापारिक संस्थान, होटल, रेस्टोरेन्ट तथा मनोरंजन के साधन होते है। नगर के ऊपर घनी बस्ती वाले क्षेत्र में श्रमिक, मजदूर और निम्न आर्थिक वर्ग के लोग निवास करते हैं। बाहर क्षेत्र में घनी तथा प्रतिष्ठित लोग रहते हैं। इस प्रकार नगरीय समुदाय प्रत्येक क्षेत्र में विशेषीकृत होता है।

6. द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता

द्वितीयक सम्बन्ध का अर्थ होता है अपने हितों की पूर्ति के लिए स्थापित किये गये औपचारिक सम्बन्ध। नगरों में विभिन्न समतियों, समूहों एवं संगठनों की सदस्यता का आधार द्वितीयक सम्बन्ध है। नगरों में सामाजिक नियन्त्रण के साधन--पुलिस, कानून, न्यायालय भी द्वितीयक है।

नगरीय समुदाय की विशेषताएँ

नगरीय समुदाय की निम्नांकित विशेषताएँ होती है--

1. जनसंख्या की बहुलता।
2. जनसंख्या की विभिन्नता।
3. व्यवसायों की बहुलता एवं भिन्नता।
4. श्रमविभाजन एवं विशेषीकरण।
5. द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता।
6. कृत्रितमा।
7. गतिशीलता।
8. विभिन्नता।
9. व्यक्तिवादिता।
10. सामाजिक समस्याओं की बहुलता।

जनजातीय सामुदायिक कल्याण

भारत के विभिन्न प्रदेशों में, ग्रामीण तथा नगरीय अंचलों से दूर जंगलो, पहाड़ियों, घाटियों, तराइयों आदि क्षेत्रों में आदिम व्यवस्था में रहने वाले लोगों को जनजाति, आदिवासी, वन्य जाति, आदिम जाति आदि विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। भारतीय संविधान में इन लोगों को अनुसूचित जनजातियों के नामों से संबोधित किया गया है। भारतीय जनजातियां सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि अनेक प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इनके विकास के लिए बराबर प्रयास चल रहे हैं और संविधान में इनके लिए विशेष व्यवस्थाएं दी गई हैं।

समाज कार्य हेतु जनजातियों की समस्याएँ

जनजाति एक ऐसा क्षेत्रीय मानव समूह है, जिसकी एक सामान्य संस्कृति, भाषा, राजनीतिक संगठन एवं व्यवसाय होता है तथा जो सामान्यतः अंतर्विवाह के नियमों का पालन करता है। समाज कार्य हेतु जनजातियों की प्रमुख समस्याएं यहां दी जा रही हैं–

सांस्कृतिक समस्याएँ

बाहरी संस्कृति के सम्पर्क से जनजातियों के जीवन में अनेक गम्भीर सांस्कृतिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं मुख्य सांस्कृतिक समस्याएँ इस प्रकार हैं :

भाषा संबंधी समस्या

बाहरी संस्कृति के सम्पर्क में आने से जनजातियों में प्रमुख समस्या, दो भाषावाद उत्पन्न हो गई है। अपनी भाषा के साथ जनजाति के लोग बाहरी भाषा भी बोलने लगे हैं। कुछ तो अपनी भाषा की ओर से इतने उदासीन हो गए हैं कि मानो उसे भूल ही गए हों। इनमें विभिन्न जनजाति के लागों में सांस्कृतिक आदान–प्रदान में बाधा उत्पन्न होती है। इस बाधा से सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों का पतन होने लगता है और सामुदायिक भावना का ह्रास होता है।

विभिन्न जातियों में सांस्कृतिक भिन्नता की समस्या

ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से कुछ लोग ईसाई बन गए हैं। इन लोगों ने हिन्दुओं की जाति प्रथा को अपना लिया है परन्तु ऐसा सबके न करने के कारण एक जनजाति के लोंगों में आपसी सांस्कृतिक विभेद, तनाव, सामाजिक दूरी या विरोध पैदा हुए। साथ–साथ वे उन संस्कृतियों को पूर्णतया अपना भी न सके जिनकी उन्होंने नकल की।

युवा गृहों का निर्बल होना

ईसाई तथा हिन्दू लोगों के सम्पर्क से जनजातियों की अपनी संस्थाएं नष्ट हो होती जा रही हैं। युवा गृहों के माध्यम से जनजातियों के युवक–युवतियों को अपनी संस्कृति को सीखने का मौका मिलता था।

जनजातीय ललित कलाओं का ह्रास

जनजातियों में नृत्य, संगीत, ललित कलाएँ, लकड़ी पर नक्काशी आदि का काम दिन पर दिन घटता जा रहा है। बाहय संस्कृतियों के सम्पर्क से जनजातियों के मन में इन ललित कलाओं के प्रति उदासीनता और अनादर का भाव आता जा रहा है।

धार्मिक समस्याएँ

जनजातियों पर हिन्दू और ईसाइयों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। राजस्थान के भील लोगों में हिन्दू धर्म के प्रभाव के कारण एक धार्मिक आन्दोलन 'भगत आन्दोलन' चला जिसने भीलों को भ्ज्ञगत और अभगत दो वर्गों में विभाजित कर दिया। बिहार और असम की जनजातियां ईसाई धर्म से प्रभावित हैं। ईसाई धम के कारण एक नहीं वरन् एक ही परिवार में धार्मिक भेदभाव दिखाई पड़ने लगे हैं। इससे जनजातियों में असंतोष पैदा होना स्वाभाविक है।

सामाजिक समस्याएँ

सभ्य समाज के सम्पर्क में आकर जनजातियों में जो समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं उनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:

- कन्या मूल्य
- बाल विवाह
- नैतिकता का पतन
- वेश्यावृत्ति, गुप्त रोग आदि

आर्थिक समस्याएँ

- स्थानान्तरित खेती की समस्या
- वनों से संबंधित समस्याएँ
- बदलती अर्थव्यवस्था की समस्या
- ऋणग्रस्तता की समस्या
- औद्योगिक मजदूरों की समस्याएँ
- भूमि संबंधी समस्याएँ
- शैक्षणिक समस्याएँ
- राजनैतिक व प्रशासन संबंधी समस्याएँ

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ

सांस्कृतिक सम्पर्क की प्रक्रिया के फलस्वरूप जनजातीय लोगों में अन्य समस्याओं के साथ–साथ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ भी घर करती जा रही हैं।

- रोग ग्रस्तता और अज्ञानता
- उचित चिकित्सा का अभाव
- मादक पदार्थों के सेवन से उत्पन्न समस्याएँ

हमने जाना

- समाज कार्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है किन्तु इसे मानव सेवा, चिकित्सीय, मनोचिकित्सीय एवं नैदानिक विद्यालयगत समाज कार्य एवं ग्रामीण, शहरी एवं जनजातीय सामुदायिक कल्याण क्षेत्र में बांटा जा सकता है।
- मानव सेवा क्षेत्र में बच्चों, वृद्धों, महिलाओं एंव श्रमिकों के साथ किया जाने वाला समाज कार्य आता है।
- भारत में बच्चों, वृद्धो, महिलाओं एवं श्रमिकों की समस्याओं के समाधान के लिए अनेक प्रयास किए गए है किन्तु इनके समस्याओं का पूर्णतयाः समाधान करना अभी शेष है।
- चिकित्सीय एवं मनोचिकित्सीय समाज कार्य के अन्तर्गत रोगी के समायोजन के लिये रोगी का चिकित्सक, अस्पाताल एवं समाज के साथ समायोजन से सम्बन्धित गतिविधियाँ की जाती हैं।
- रोगी के समक्ष बिमारी के दौरान अनेक प्रश्न होते हैं किन्तु प्रायः चिकित्सक द्वारा दवा के आलावा किसी प्रश्न का समाधान नहीं हो पाता है।
- चिकित्सीय समाज कार्य में सामाजिक कार्यकर्ता चिकित्सा शब्दावली, क्षेत्रो, चिकित्सकों एवं परिसर के साथ ही रोगी की मानसिक स्थिति से परिचित हो जाने के कारण उसके जिज्ञासाओं का समाधान एवं उचित परामर्श देने में सक्षम हो जाता है।
- विद्यालयगत समाज कार्य का उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। इसके अन्तर्गत शिक्षक, विद्यार्थी, विद्यालय एवं समुदाय के बीच होने वाली अंतः क्रियाओं को केन्द्रित करते हुए सामाजिक कार्यकर्ता मध्यस्थ, परामर्शदाता एवं पैरवीकार की भूमिका का निर्वाह करता है।

- विद्यालयगत समाज कार्य के अन्तर्गत विद्यालयों की समस्याओं, विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के बेहतर संबंधो एवं शाला त्यागी बच्चो के शिक्षा इत्यादि से सम्बन्धित क्षेत्र आते हैं।
- ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषता– प्रकृति पर निर्भरता, आकार का छोटा होना, कम जनसंख्या, प्राथमिक संबंधो की प्रधानता, सरल एवं सादा जीवन, संयुक्त परिवार, कृषि पर निर्भरता, जजमानी प्रथा, भाग्यवादिता, स्त्रियों की निम्न स्थिति इत्यादि है।
- ग्रामीण समाज कार्य के तहत गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, कुरीतियाँ, इत्यादि के निवारण एवं समन्वित ग्रामीण विकास के लिए ग्रामीणों की जागरूकता, क्षमता संबंर्धन एवं मनोवृत्ति में परिवर्तन से सम्बन्धित कार्य किये जाते हैं।
- नगरीय जीवन की प्रमुख विशेषताये है– जनसंख्या की अधिकता, जनसंख्या मे विभिन्नता, आर्थिक क्रियाओं पर केन्द्रित, विभिन्न आर्थिक वर्गो का होना, स्थानीय पृथक्करण, द्वितीयक संबंधो की प्रधानता इत्यादि है।
- नगरीय समाज कार्य में मालिन वस्तियों, स्वच्छता, श्रमिकों की समस्या, कचरा प्रबंधन, पर्यावरण की समस्या इत्यादि से सम्बन्धित समाज कार्य किये जाते हैं।
- जनजातीय समुदाय की समस्यायें अन्य कमजोर वर्गों जैसी ही हैं किन्तु उनकी अस्मिता, संस्कृति एवं परम्परागत आवासीय परिवेश के संरक्षण की समस्याओं से सम्बन्धित समाज कार्य भी किये जाते हैं।
- जनजातीय समुदाय की प्रमुख समस्याएँ– सास्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी हैं, जिनके लिए समाज कार्य अपेक्षित है।

कठिन शब्दों के अर्थ

अशक्त — सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से शक्तिहीन अथवा कमजोर जिसे विशेष सहयोग देकर सामाजिक कार्यकर्ता सशक्त (Empowered) बनाता है।

निराश्रय — ऐसा व्यक्ति जिसका कोई सहारा न हो।

मनश्चिकित्सीय समाज कार्य — मानसिक रूप से कमजोर होने के कारण संबंधों में समायोजन की समस्या से पीड़ित व्यक्ति की सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा सहायता करना।

मनो–चिकित्सा — मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों की विशेषज्ञ चिकित्सक द्वारा चिकित्सा किया जाना

अभ्यास के प्रश्न :

1. समाज कार्य के क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
2. बच्चों के साथ समाज कार्य करने के लिए किन बातो पर ध्यान देना आवश्यक है?
3. वृद्धो की प्रमुख समस्याएं कौन सी हैं। समाज कार्य उनका कैसे निवारण करेगा?
4. महिलाओ के साथ समाज कार्य करने वाले कार्यकर्ता द्वारा कैसे कार्य किया जाता है?
5. श्रमिको के कल्याण के लिए शासन द्वारा क्या प्रयास किये गये हैं?
6. चिकित्सीय समाज कार्य की आवश्यकता क्यों है?

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

1. समाज कार्य परिचय – प्रो0 राजाराम शास्त्री।
2. समाज कार्य का इतिहास एवं दर्शन – प्रो0 मिर्जा रफुद्दीन अहमद।
3. समाज कार्य – डॉ. जी. आर. मदन।
4. सामाजिक कार्य का परिचय – डॉ. धर्मपाल चौधरी।
5. समाज कार्य– डॉ. ए.एस. इनाम शास्त्री।
6. समाज कार्य– सिद्धान्त एवं अभ्यास– डॉ. कृपाल सिंह सूदन।
7. समाज कार्य– कुंवर सिंह तिलारा।
8. समाज कार्य के सिद्धान्त– डॉ. आर. सचदेवा एवं विद्याभूषण।
9. असामान्य मनोविज्ञान–गोपाल कृष्ण मखीजा एवं मनोज मखीजा।
10. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान– अरूण कुमार सिंह एवं आशीष कुमार सिंह।
11. सामाजिक परिवर्तन– रविन्द्र नाथ मुखर्जी।
12. सामाजिक मनोविज्ञान– जी.के. अग्रवाल एवं एस.एस. पाण्डेय।

****

1.5 समाज कार्य एवं अन्य सम्बन्धित अवधारणायें (Social Work and Other Related Concepts)

उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे –

- सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक सुधार क्या है?
- सामाजिक नीति एवं सामाजिक क्रिया क्या है?
- सामाजिक न्याय एवं सामाजिक सशक्तिकरण क्या है?
- मानव अधिकार एवं मानव अधिकार घोषणा पत्र क्या है?

1.5.1 सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक सुधार (Social Security and Social Reforms)

सामाजिक सुरक्षा

कल्याणकारी राज्यों में सामुदायिक जीवन में होने वाली दुर्घटनाओं, रोग ग्रस्तता, वृद्धावस्था आदि कठिनाइयों में पड़े लोगों को सार्वजनिक रूप से सुरक्षा प्रदान करना सामाजिक सुरक्षा है, ताकि ऐसी किसी समस्या व कठिनाई से उन्हे मुक्त कराने में सहायता मिल सके।

स्टैक के मतानुसार, "सामाजिक सुरक्षा से हमारा भावार्थ, आधुनिक जीवन सम्बन्धी आकस्मिक घटनाओं जैसे रूग्णता, बेकारी, वृद्धावस्था–पराश्रिता, उद्यम सम्बन्धी दुर्घटनाएँ तथा जिनके विरूद्ध अपनी योग्यता व दूरदर्शिता द्वारा स्वयं अपने व अपने परिवार की सुरक्षा कर सकने की असमर्थता की स्थिति में समाज द्वारा प्रदत्त संरक्षात्मक कार्यक्रम से है।"

स्टैक द्वारा व्यक्त की गई सामाजिक सुरक्षा की व्याख्या से ज्ञात होता है कि सामाजिक सुरक्षा से तात्पर्य समाज द्वारा नियोजित उन कार्यक्रमों से है, जो बेकारी, बीमारी वृद्धों की पराश्रिता व औद्योगिक दुर्घटनाओं के कुप्रभावों से व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करने हेतु संचालित किए जाते है। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ये कठिनाइयाँ ऐसी हों जिनसे व्यक्ति अपनी योग्यता व दूरदर्शिता का उपयोग करने पर भी न तो स्वयं अपना बचाव कर सकता हो ना ही अपने परिवार को सुरक्षित रख सकने में सक्षम हो। अर्थात कुछ कठिनाइयाँ व आकस्मिक घटनाएं ऐसी होती हैं जिनसे व्यक्ति अपनी व अपने परिवार की सुरक्षा करने में असमर्थ होता है तो इसके लिए समाज ऐसे कार्यक्रम संचालित करता है, जिनके द्वारा व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान की जा सके– उन्हीं सुरक्षात्मक कार्यक्रमों को सामाजिक सुरक्षा की संज्ञा दी जाती है, जैसे सार्वजनिक सहायता, समाजिक बीमा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाएं, समाज कल्याण आदि।

समाज कार्य के अन्तर्गत व्यक्तियों समूहों व समुदायों की इस प्रकार सहायता की जाती है कि इन सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों के बारे में उन्हें पूर्ण ज्ञान व जानकारी हो सके तथा वे आवश्यकतानुसार उनका उपभोग करके स्वयं अपनी व अपने परिवार की सुरक्षा कर सके।

डी0 पाल चौधरी ने सामाजिक सुरक्षा को स्पष्ट रूप से विवेचित करते हुये अपनी पुस्तक 'ए हैण्ड बुक आफ सोशल वेलफेयर' में कहा है कि–

'सामाजिक सुरक्षा को ऐसी सुरक्षा के रूप में समझा जा सकता है, जो समाज को ऐसे जोखिमों के विरूद्ध उपयुक्त व्यवस्था के रूप में समझा जाता है, जिनसे सदस्यों के प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने की आशंका हो।' अर्थात समाज द्वारा प्रदान की जाने वाली ऐसी सुरक्षा को हम सामाजिक सुरक्षा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, जो उपयुक्त संगठनों द्वारा अपने उन सदस्यों को प्रदान की जाती है जो जोखिम व खतरे के बीच कार्यरत होते हैं और उनकी असुरक्षा, दुर्घटनाओं अथवा अक्षमता के कारण क्षतिग्रस्त होने की सम्भावना बनी रहती है।

सामाजिक सुरक्षा के दो प्रमुख रूप हैं:–

1. सामाजिक सहायता
2. सामाजिक बीमा

1. सामाजिक सहायता

सामाजिक सहायता के अंतर्गत कमजोर एवं असहाय वर्ग, जो अतिरिक्त सहायता के बगैर सम्मानजनक जीवन–यापन नही कर सकते हैं, जैसे वृद्ध, दिव्यांग, कमजोर वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति महिलायें इत्यादि को, विभिन्न योजनाओं एवं स्कीमो के माध्यम से सहायता उपलब्ध करायी जाती है।

2. सामाजिक बीमा

किसी आकस्मिक दुर्घटना या भावी अपंगत्य की संभावना के समय परिवार को टूटने से बचाने के लिए समाज या शासन द्वारा भावी घटना के पहले ही बीमा करा दिया जाता है, जैसे किसान बीमा, पेंशन बीमा इत्यादि। उस घटना के घटित होने पर बीमित वर्ग या समुदाय के सदस्यों को निर्धारित धनराशि प्रदान कर उन्हें राहत दी जाती है।

सामाजिक सुधार

समाज सुधार से तात्पर्य उन कार्यो से है, जिनके द्वारा सामाजिक मान्यताओं, सामाजिक संगठनों एवं सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन लाया जाये। समाज सुधार का प्रमुख उद्देश्य सामान्यतः संगठन के व्यवहार तथा कार्यो में परिवर्तन द्वारा सुधार करना है। अर्थात सामाजिक ढ़ाचे

में प्रजातान्त्रिक या अन्य परिवर्तन लाकर उसे वैध रुप व सामाजिक मान्यता देना समाज सुधार है। समाज सुधार सामाजिक समस्याओं में परिवर्तन लाने का प्रयास करता हैं।

महिलाओं के अधिकारों को मान्यता के लिए संघर्ष, हरिजनों के लिये सुधार की मांग करना, सती प्रथा, छुआ–छूत, बालविवाह, दहेज प्रथा इत्यादि को समाप्त करके सुधार लाने के उद्देश्य से विभिन्न अधिनियम पारित किये गये। इस प्रकार मात्र वैधानिक नियन्त्रणों के द्वारा ही नही बल्कि शिक्षा, एवं ज्ञान द्वारा ही समाजिक सुधार सम्भव है। सामाजिक संस्थाओं, मूल्यों, व्यवहारों एवं संगठनों में किसी भी प्रकार का लाभकारी परिवर्तन लाना ही समाज सुधार है।

नटराजन (Natarajan) के अनुसार समाज सुधार में समाज सुधारक अपने और दूसरे व्यक्तियों के सामने आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है और सामाजिक प्रगति के लिये अनुकूल दशाओं का निर्माण करता है।''

सामाजिक सुधार के लिए सामाजिक सुधारक में दृढ़ इच्छा शक्ति का होना आवश्यक है। समाज को ढर्रे पर चलने की आदत होती है, और लम्बा संघर्ष चलने के बाद ही अपेक्षित सुधार संभव हो पाता है।

1.5.2 सामाजिक नीति एवं सामाजिक क्रिया (Social Policy and Social Action)

सामाजिक नीति

सामाजिक नीति राज्य द्वारा निर्धारित एवं संचालित वे कार्य हैं जो सम्पूर्ण राज्य की जन संख्या के आर्थिक व सामाजिक स्तर को बनाए रखने तथा विकसित करने के सन्दर्भ में महत्व एवं उत्तरदायित्व पूर्ण प्रकिया के अन्तर्गत निर्धारित किए जाते हैं। अर्थात समाज के विकास व कल्याण के लिए सार्वजनिक रूप से कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण कार्यों के समुचित संचालन हेतु दिशा व मार्ग निर्धारित करने की प्रक्रिया को ही हम सामाजिक नीति कह सकते हैं। सामाजिक नीति को समाज कार्य की महत्वपूर्ण प्रणाली 'समाज कल्याण प्रशासन' एवं नियोजन द्वारा समाज सेवा के रूप में कार्यान्वित किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज कार्य एवं सामाजिक नीति के बीच ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि समाज कार्य की अनुपस्थिति में सामाजिक नीति का समाज सेवा के रूप में परिवर्तन असम्भव है। प्रो0 सुशील चन्द्रा द्वारा दी गई समाज कार्य की परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज कार्य एक गतिशील प्रकिया है जिससे सामाजिक नीति को कार्यान्वित किया जाता है। समाज कार्य द्वारा सामाजिक नीति का समाज सेवा के रूप में परिवर्तन व कार्यान्वयन वैज्ञानिक ज्ञान व प्रणालियों के प्रयोग द्वारा राजकीय एवं स्वैच्छिक दोनों ही प्रकारों की संस्थाओं के माध्यम से किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक नीति के कार्यान्वयन व संचालन में समाज कल्याणकारी संस्थाओं का आधार भूत स्थान व महत्व है, बिना संस्था के कोई भी सामाजिक नीति

का संचालन सम्भव नहीं है। अतः सामाजिक नीति को कल्याणकारी संस्थाओं के सन्दर्भ में भी परिभाषित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में फ्रीडलैण्डर के विचार को सूदन एवं श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक समाज कार्य में निम्नलिखित रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है:

1. 'किसी भी समाज कल्याण संस्था की सामाजिक नीति के निर्धारण से उस संस्था की प्रकृति, संरचना एवं कार्यों को निर्धारित किया जाता है।
2. सरकारी समाज कल्याण संस्था में इस नीति का निर्धारण संसद द्वारा, राजकीय विभाग की नीति राज्य की विधान सभा द्वारा एवं गैर–सरकारी संस्था की नीति उस संस्था के निदेशक मण्डल या कार्यकारणी समिति द्वारा निर्धारित होती है''

सामाजिक क्रिया (Social Action)

सामाजिक क्रिया समाज कार्य की एक सहायक प्रणाली है। सन् 1914 में नेशनल कॉन्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क में एक लेख प्रस्तुत किया गया (Fitch John 1990)। इस लेख में सामाजिक क्रिया को समाज कार्य का अभिन्न क्षेत्र माना गया है।

फ्रीडलेण्डर (Friedlander) ने सामाजिक क्रिया को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''सामाजिक क्रिया एक ऐसा संगठित सामूहिक प्रयास है, जिसका उद्‌देश्य समााजिक विधानों या सामाजिक सेवाओं के प्रशासन द्वारा समाजिक उन्नति करके व्यापक सामाजिक समस्याओं का समाधान करना है।''

सामाजिक क्रिया के स्तर

सोलेण्डर ने सामाजिक क्रिया के कार्यो के तीन प्रमुख स्तर बताये है।

1. स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में स्थानीय,क्षेत्रीय या राष्ट्रीय सामाजिक संस्थाओं के कार्यो के रुप में सामाजिक क्रिया।
2. समाज कार्य व्यवसाय के रुप में सामाजिक क्रिया ।
3. समाज कार्यकर्ता और एक नागरिक के रुप में सामाजिक क्रिया।

सामाजिक क्रिया की विशेषताए

1. सामाजिक क्रिया के कार्यक्रमों की प्राथमिकता स्पष्ट की जाती है।
2. सामजिक क्रिया के उद्‌देश्य सामान्यतः स्पष्ट रुप से परिभाषित किये जाते हैं।
3. उन समूहों के लिए सही सूचनाओं को पहुचाने की व्यवस्था की जाती है, जिन पर सामाजिक क्रिया का उत्तरदायित्व होता है।
4. अन्य संस्थाओं के साथ सहयोग की दिशाओं को स्पष्ट किया जाता है।
5. संस्था के संगठन के अनुसार सामाजिक क्रिया का रुप परिभाषित किया जाता है।
6. समाजिक क्रिया के कार्यक्रमों के लिये व्यवसायिक कार्यकर्ताओं की सेवायें प्रदान की जाती है।

1.5.3 सामाजिक न्याय एवं सामाजिक सशक्तिकरण (Social Justice and Social Empowerment)

सामाजिक न्याय (Social Jaustice)

सामाजिक न्याय की अवधारणा बदलती रही है। पूर्व में जो सामाजिक न्याय समझा जाता था आज वह सामाजिक अन्याय हो गया है। एक देश में जो सामाजिक न्याय माना जाता है, दूसरे देश में वह सामाजिक अन्याय हो सकता है। एक धर्म जिसे सामाजिक न्याय मानता है, दूसरा धर्म उसे सामाजिक अन्याय मान सकता है। ज्यो–ज्यों समाज आगे बढ़ता जायेगा समाज का विकास होगा। सामाजिक न्याय की अवधारणा भी परिवर्तित होती जायेगी।

प्लेटो ने ऐसे समाज की कल्पना भी नही की थी जो दासता से मुक्त हो। प्लेटो के अनुसार दासता समाज का एक अभिन्न अंग है। पहले सामाजिक न्याय की दासता थी। आज समाज में दासता नजर नहीं आती। प्रत्यक्ष रुप से दास प्रथा की समाप्ति हो चुकी है। वर्तमान में सामाजिक न्याय की समानता है। वर्तमान समाज में समस्त गतिविधियाँ समानता पर केन्द्रित हैं।

पूंजीवादी समाज में श्रमिक स्वतन्त्र नहीं है। साम्यवाद मे एक ऐसे समाज की कल्पना की गई है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को स्वतन्त्र समझे एवं दूसरे व्यक्ति उसके अधिकारों का हनन न करें।

जाति प्रथा पहले अन्याय नहीं थी। निम्न वर्ग के लोग भी इसे अन्याय नहीं मानते थे। वे इसे ईश्वरीय कृपा मान कर स्वीकार करते थे।

आर्थिक प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंग हैं–

1. उत्पादन (Production)
2. वितरण (Distribution)
3. उपभोग (Consumption)

यदि उत्पादन के आधार पर सामाजिक न्याय का विश्लेषण किया जाये तो उत्पादन का समाज मे समान वितरण सामाजिक न्याय कहलायेगा, लेकिन यदि इसे व्यवहारिक रुप से लिया जाये और उत्पादन का समान वितरण किया जाये तो प्रति व्यक्ति प्राप्ति अत्यन्त कम होगी एवं उपभोग हेतु उसकी मात्रा अत्यन्त कम होगी। उपभोग के आधार पर यदि विश्लेषण किया जाये तो एक विशेष स्तर के लोगों का उपभोग ज्यादा है, क्योंकि वे परिष्कृत वस्तु ग्रहण करते हैं जिससे अवशिष्ट पदार्थ की मात्रा ज्यादा होती है।

वर्तमान समय में सत्ता जन सहयोग द्वारा प्राप्त होती है। आज पुरानी मान्यतायें बदल गई हैं। आज कानून सबको एक नजर से देखता है। कानून (Law) में कोई भेदभाव नही एक अपराध के लिये समस्त जाति के लोगों में समान सजा का प्रावधान है। यह विधिक न्याय (legal Jasticl) है।

इस प्रचलित मान्यताओं के अनुसार समाज जिंस व्यवहार को सामाजिक अन्याय मानता है, उसे न करने की व्यवस्था एवं प्रक्रिया ही सामाजिक न्याय है।

वर्तमान प्रजातांत्रिक युग मे समानता पर विशेष बल दिया जाता है। असमानता का न होना ही न्याय है। किन्तु असमानता दो प्रकार की होती है –

- प्राकृतिक असमानता।
- सामाजिक असमानता।

कुछ असमानता प्रकृति प्रदत्त है, जैसे कोई लंबा है, कोई छोटा है या कोई मोटा है, कोई पतला है। इसी प्रकार स्त्री एवं पुरूष प्राकृतिक रूप से भिन्न–भिन्न है। प्राकृतिक असमानता हम समाप्त नही कर सकते हैं।

सामाजिक असमानता वह भेद–भाव है जिसे समाज ने बनाया है, जैसे अस्पृश्यता एवं स्त्री होने के कारण शिक्षा का अधिकार न होना। समाज द्वारा किए गए इस प्रकार के अन्याय को दूर करना ही सामाजिक न्याय है।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण, विभिन्न प्रकार की सामाजिक कल्याण योजनायें इत्यादि के रूप में अनेक प्रयास किए जा रहे हैं।

सामाजिक न्याय की विशेषतायें :–

1. सामाजिक न्याय क्रमशः होता है।
2. समााजिक न्याय की आधारभूत आवश्यकता भौतिक संसाधन है।
3. भौतिक संसाधन जिस मात्रा में उपलब्ध होंगे सामाजिक न्याय उसी मात्रा में अवतरित होता है।
4. यदि भौतिक संसाधन सहयोग नही करेंगे तो सामाजिक न्याय स्थापित नहीं होगा।

5. यदि भौतिक संसाधन प्रचुर मात्राा में हो तो सामाजिक न्याय के लिये संघर्ष नहीं होगा। जैसे वायु मण्डल में हवा प्रचुर मात्राा में है। अतः श्वसन के लिये हवा (आक्शीजन) प्राप्त करने में संघर्ष नहीं करना पड़ता है।

6. श्रम के आधार पर आय का वितरण हो तो सामाजिक न्याय होता है।

7. सामाजिक न्याय विषयगत (Objective) न्याय है, वैकल्पिक नहीं।

सामाजिक सशक्तिकरण

किसी व्यक्ति, समुदाय या संगठन की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, लैंगिक या आध्यात्मिक शक्ति में सुधार को सशक्तिकरण कहा जाता है। सामाजिक सशक्तिकरण वे सेवायें अथवा गतिविधियां हैं जिन्हें समाज के कमजोर वर्गों को शक्ति प्रदान करने के लिए की जाती है, जिसमें उनके स्वातंत्रता, आत्मविश्वास, उच्च जीवन सारयुक्त गरिमामय जीवन जीने की क्षमता प्राप्त हो सके। इस प्रकार यह ऐसी प्रक्रिया है, जिसमे दलित एवं कमजोर वर्ग के लोगों के सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक कमियों को दूर करने के लिए किए गए प्रयास आते हैं। इसकी निम्नांकित रणनीति हो सकती है :–

1. आर्थिक सहायता।
2. कौशल विकास।
3. समूहों में संग्रहित करना।
4. गैर लाभकारी संगठनों का निर्माण।
5. सामाजिक सहायता कार्यक्रम।
6. जीवन स्तर में सुधार की योजनायें बनाना।

1.5.4 मानव अधिकार (Human Rights)

'मानव अधिकार' वे न्यूनतम अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को इसलिये प्राप्त होना चाहिए, क्योंकि वह मानव परिवार का सदस्य है। मानव अधिकारों की धारणा मानव गरिमा की धारणा से जुड़ी है। अतएव जो अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं, उन्हें मानव अधिकार कहा जा सकता है।

इस प्रकार मानव अधिकारों की धारणा न्यूनतम मानव आवश्यकताओं पर आधारित है। इनमे से कुछ शारीरिक जीवन तथा स्वास्थ्य के लिए हैं और अन्य मानसिक जीवन तथा स्वास्थ्य के लिए

हैं। यद्यपि मानव अधिकारों की संकल्पना उतनी ही पुरानी है, जितनी कि प्राकृतिक विधि पर आधारित प्राकृतिक अधिकारों का प्राचीन सिद्धान्त, तथापि 'मानव अधिकारों' पद की उत्पति द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय चार्टरों और अभिसमयों से हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् व्यक्तियों की स्थिति में रूपान्तरण हुआ जो समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि में सबसे अधिक महत्वपूर्ण विकास है। मानव अधिकार राज्यों के अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय विधि से उत्पन्न अधिकारों और कर्तव्यों से युक्त होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विषय हो गया है। जबकि कतिपय नियम प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की स्थिति और कार्यकलाप के विनियमन से सम्बन्धित हैं, कतिपय अन्य प्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करते हैं।

'मानव अधिकारों' पद का प्रयोग सर्वप्रथम अमरीकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 16 जनवरी, 1941 में कांग्रेस को संबोधित अपने प्रसिद्ध संदेश में किया था जिसमें उन्होंने चार मर्मभूत स्वतंत्रताओं पर आधारित विश्व की घोषणा की थी। इनको उन्होंने इस प्रकार सूचीबद्ध किया था– 1. वाक् स्वातंत्र्य, 2. धर्म स्वातंत्र्य, 3. गरीबी से मुक्ति और 4. भय से स्वातंत्र्य।

संदेश के अनुक्रम में राष्ट्रपति ने घोषणा किया कि "स्वातंत्र्य से हर जगह मानव अधिकारों की सर्वोच्चता अभिप्रेत है। हमारा समर्थन उन्हीं को है, जो इन अधिकारों को पाने के लिए या बनाये रखने के लिए संघर्ष करते हैं।" मानव अधिकारों' पद का प्रयोग फिर अटलांटिक चार्टर में किया गया था। तदनुरूप मानव अधिकारों का लिखित प्रयोग संयुक्त राष्ट्र चार्टर में पाया जाता है, जिसको द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सैनफ्रांसिस्को में 25 जून, 1945 को अंगीकृत किया गया था। उसी वर्ष के अक्टूबर माह में भारी संख्या में हस्ताक्षरकर्ताओं ने इसका अनुसमर्थन कर दिया। संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उद्देशिका में घोषणा की गयी अन्य बातों के साथ–साथ संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद–1 में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र के 'प्रयोजन' ".....मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किये बिना मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग............ प्राप्त करना" होंगे।

संयुक्तराष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को "मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा" को स्वीकार किया। इस घोषणा से राष्ट्रों को प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ और वे इन अधिकारों को अपने संविधान या अधिनियमों के द्वारा मान्यता देने और क्रियान्वित करने के लिए अग्रसर हुए। इस घोषणा–पत्र में कुल 30 अनुच्छेद है। इसके अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक अधिकार, नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार तथा बालकों एवं स्त्रियों इत्यादि के अधिकारों का प्रावधान है।

मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं प्रांतीय मानवाधिकार आयोंगो की स्थापना की गयी है।

अनुच्छेद	मानवाधिकार घोषणापत्र में वर्णित मानवधिकारों का विवरण
1.	सभी मनुष्यों को गौरव, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का अधिकार प्राप्त है।
2.	जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, विचारधारा, जन्म, सम्पत्ति, मर्यादा के आधार पर भेदभाव का न होना।
3.	प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।
4.	गुलामी प्रथा और गुलामो का व्यापार अपने सभी रूपों में वर्जित होगा।
5.	किसी व्यक्ति के साथ शारीरिक यातना, निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार नही किया जायेगा।
6.	कानून की दृष्टि में सभी को समान स्वीकृति प्राप्ति का अधिकार है।
7.	बिना किसी भेद–भाव के सभी कानून का समान संरक्षण प्राप्त करने के अधिकारी हैं।
8.	अधिकारों के अतिक्रमण होने पर राष्ट्रीय अदालतो मे सहायता पाने का अधिकार है।
9.	किसी को भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबंद या देश निष्कासन नही किया जायेगा।
10.	आरोपित फौजदारी मामलों की सुनवायी न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष और निषपक्ष न्यायालय द्वारा हो।
11.	बिना अपराध सिद्ध हुये और बिना प्रचलित कानूनो के प्रावधान के किसी को अपराधी नही माना जायेगा।
12.	किसी भी व्यक्ति की एकांतता और सम्मान के विरूद्ध हस्ताक्षेप नही किया जा सकेगा।
13.	प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सीमाओं मे स्वतंत्रता पूर्वक आने–जाने, बसने तथा पराये देश को छोंडकर अपने देश वापस आने का अधिकार है।

14.	गैर राजनीतिक अपराधों या संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों के विरूद्ध कार्यो के अलावा सताये जाने पर दूसरे देश में शरण लेने का अधिकार है।
15.	प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र की नागरिकता का अधिकार है तथा मनमाने ढंग से उसे उसकी नागरिकता से वंचित नहीं किया जा सकता।
16.	बालिक स्त्री–पुरूषों को आपस में विवाह करने अथवा विवाह विच्छेद का अधिकार है।
17.	प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति रखने का अधिकार है, जिससे वंचित नही किया जा सकता।
18.	प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतरात्मा, धर्म, विश्वास, क्रिया, उपासना, की स्वतंत्रता है।
19.	प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है।
20.	प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्ण सभा करने, समिति बनाने एवं किसी भी संस्था का सदस्य बनने की स्वतत्रंता है।
21	प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन में भाग लेने, शासकीय नौकरियों को प्राप्त करने एवं मतदान द्वारा शासन के लिए अपना मत प्रकट करने का अधिकार है।
22	समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति, व्यक्तित्व विकास एवं गौरव हेतु आवश्यक आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का हक है।
23	प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, समान्य कार्य के लिये समान वेतन पाने और श्रमजीवी संघ बनाने तथा उसमे अपने हितों की रक्षा के लिये भाग लेने का अधिकार है।
24	प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है।
25	प्रत्येक व्यक्ति को उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने, बेकारी, बिमारी, असमर्थता, वैधव्य, बढ़ापे इत्यादि में सुरक्षा एवं प्रत्येक बच्चे को समान सामाजिक संरक्षण पाने का अधिकार है।
26	प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी और माता–पिता को अपने बच्चे की शिक्षा का स्वरूप जानने का अधिकार है।

27	प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने तथा किसी वैज्ञानिक, साहित्यिक कृति जिसका वह रचैता है के आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है।
28	प्रत्येक व्यक्ति को इस घोषणापत्र में उल्लखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूर्णतः प्राप्त करने का अधिकार है।
29.	प्रत्येक व्यक्ति जिस समाज में रहकर अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर रहा है के प्रति उसके कर्त्तव्य हैं और अपने अधिकारों का उपयोग कानून द्वारा निर्धारित सीमाओं मे करेगा।
30.	किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति को इस घोषणापत्र में उल्लखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं के हनन से संबंधित किसी भी कार्य में संलग्न होने का अधिकार नहीं है।

हमने जाना

- किसी आकस्मिक दुर्घटना, भावी अपंगता या समस्या की संभावना के समय पीड़ित परिवार को टूटने से बचाने के लिए समाज द्वारा पहले से की जाने वाली सुरक्षात्मक व्यवस्था को सामाजिक सुरक्षा कहते हैं।
- सामाजिक सुरक्षा के मुख्य दो रूप हैं– सामाजिक सहायता और सामाजिक बीमा।
- समाज सुधार वे प्रयास हैं जिनसे सामाजिक विकास में बाधक सामाजिक मान्यताओं, सामाजिक संगठनों एवं सामाजिक व्यवहारों को परिवर्तित किया जाता है।
- राज्य द्वारा ऐसे कार्यों की स्वीकृति जो समाज के विकास एवं कल्याण के लिए मार्ग प्रशस्त करें, सामाजिक नीति कहा जाता है।
- सामाजिक क्रिया समाज कार्य की एक सहायक तकनीक है, जो सामाजिक नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होती है।
- मानव की गरिमा एवं समानता को बाधित करने वाले सामाजिक अन्याय को दूर करने की प्रक्रिया सामाजिक न्याय है।

- मानव की गरिमा को स्थापित करने तथा मानव को मानव होने के नाते प्राप्त होने, योग्य आवश्यक परिस्थितियों एवं स्वतंत्रताओं को समाज व राज्य द्वारा प्रदान किया जाना ही मानवाधिकार कहलाता है।
- मानवाधिकार के अंतर्गत नागरिक व राजनैतिक अधिकार जैसे जीने का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता इत्यादि जैसे आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक अधिकार सम्मिलित हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ

पूँजीवाद व्यक्ति स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर आधारित सर्वोत्तम को उत्तरजीविता को मानता है। इसके अनुसार व्यक्ति साध्य है, समाज एवं राज्य इत्यादि संस्थायें साधन हैं। अतः व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

साम्यवाद मार्क्स के विचारों पर आधारित है। यह व्यक्ति को साधन तथा समाज को साध्य मानता है। व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता नही होती है वह समाज एवं राज्य के अनुसार संचालित होता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. सामाजिक सुरक्षा का तात्पर्य बताइए।
2. सामाजिक सुरक्षा कितने प्रकार की होती है?
3. सामाजिक सुधार की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
4. किसी समाज सुधारक द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. राज्य सामाजिक नीतियों का निर्माण क्यों करता है?
6. सामाजिक क्रिया क्या है उसकी प्रमुख विशेषतायें बताइए।
7. सामाजिक न्याय को परिभाषित कीजिए।
8. मानवाधिकारों के घोषणा पत्र के लिए अधिकारो की सूची बनाइए।
9. अपने क्षेत्र में व्याप्त किसी समस्या की पहचान कीजिए जिसके लिए समाज सुधार की आवश्यकता है।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

1. सामाजिक न्याय एवं सामाजिक विधान– गंगराडे।
2. समाज कार्य के सिद्धान्त– डॉ. आर. सचदेवा एवं विद्याभूषण।
3. समाज कार्य – डॉ. जी. आर. मदन।
4. सामाजिक कार्य का परिचय – डॉ. धर्मपाल चौधरी।
5. समाज कार्य– डॉ. ए.एस. इनाम शास्त्री।
6. समाज कार्य– सिद्धान्त एवं अभ्यास– डॉ. कृपाल सिंह सूदन।
7. समाज कार्य– कुंवर सिंह तिलारा।

****



मध्य प्रदेश-गान

सुख का दाता सब का साथी शुभ का यह संदेश है,
माँ की गोद, पिता का आश्रय मेरा मध्यप्रदेश है।

विंध्याचल सा भाल नर्मदा का जल जिसके पास है,
यहां ज्ञान विज्ञान कला का लिखा गया इतिहास है।
उर्वर भूमि, सघन वन, रत्न, सम्पदा जहां अशेष है,
स्वर-सौरभ-सुषमा से मंडित मेरा मध्यप्रदेश है।

चंबल की कल-कल से गुंजित कथा तान, बलिदान की,
खजुराहो में कथा कला की, चित्रकूट में राम की।
भीमबैठका आदिकला का पत्थर पर अभिषेक है,
अमृत कुंड अमरकंटक में, ऐसा मध्यप्रदेश है।

क्षिप्रा में अमृत घट छलका मिला कृष्ण को ज्ञान यहां,
महाकाल को तिलक लगाने मिला हमें वरदान यहां,
कविता, न्याय, वीरता, गायन, सब कुछ यहां विशेष है,
हृदय देश का है यह, मै इसका, मेरा मध्यप्रदेश है।

सुख का दाता सब का साथी शुभ का यह संदेश है,
माँ की गोद, पिता का आश्रय मेरा मध्यप्रदेश है।

वन्दे मातरम्

सुजलां, सुफलां, मलयज-शीतलाम्॥
शस्य-श्यामलां, मातरम्। वन्दे मातरम्॥

शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित-यामिनीम्,
फुल्लकुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्,
सुहासिनीं, सुमधुरभाषिणीम्,
सुखदां, वरदां, मातरम्॥ वन्दे मातरम्॥

कोटि-कोटिकंठ कलकल निनाद कराले,
कोटि-कोटि भुजैर्धृतखरकरवाले।
अबला केनो मा एतो बले।
बहुबलधारिणीं, नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीं मातरम्॥ वन्दे मातरम्॥

तुमि विद्या, तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणा: शरीरे।
बाहु ते तुमि मां शक्ति, हृदये तुमि मां भक्ति
तोमारई प्रतिमा गड़ि, मन्दिरे-मन्दिरे मातरम्॥ वन्दे मातरम्॥

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणीं
कमलां कमलदलविहारिणीं
वाणी विद्यादायिनीं, नमामि त्वां, नमामि कमलाम् अमलां अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम् .... श्यामलां, सरसां, सुस्मितां, भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम्॥ वन्दे मातरम्॥

Centre for Community Leadership Development Studies
MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA
Chitrakoot, Satna (M.P.) - 485 334
Phone : 07670 - 265622, E-mail : cmcldpcourse@gmail.com
www.cmcldp.org